युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द



श्री रणजीत घोष

युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द

लेखक
श्री रणजीत घोष

भारत सेवाश्रम संघ
२११, रासबिहारी एवेन्यु
कोलकता-१९

YUGACHARYA SWAMI PRONABANANDA
by
Ranjit Ghosh

Price ₹40.00

ISBN : 978-93-84965-02-0

प्रकाशक
स्वामी सारस्वतानन्द
भारत सेवाश्रम संघ
२११, रासबिहारी एवेन्यु
कोलकाता-१९

प्रथम संस्करण
कोलकाता पुस्तकमेला-२०१५
मुद्रण संख्या-२०००

अनुवादक : डा० माया गरानी
सह अनुवादक : डा० मन मोहन झा

मूल्य-४०.०० (चालीस रूपये)

Printed by
Non-Liner (98303 24240)

सूचीपत्र

	पृष्ठ संखा
आविर्भाव	१
शिशु भोलानाथ	३
अलौकिक दर्शन	४
जीव-प्रेम का अटल संकल्प	५
बालक विनोद	७
शक्तिशाली विनोद	९
दीक्षा, सिद्धिलाभ और सन्यास	१२
बिप्लवी दल के साथ सम्पर्क	१९
सेवाव्रत की सूचना	२३
आश्रम स्थापना	२६
सेवाकार्य का प्रसार और नवीन आश्रम की स्थापना ...	२८
तीर्थ-संस्कार	३३
नैतिक आन्दोलन	३७
हिन्दु समाज-समन्वय-आन्दोलन, मिलन-मन्दिर और रक्षीदल गठन	४४
शुद्धि आन्दोलन	५४
आचार्य देव के धर्म सिद्धान्त	५६
एक लक्ष्य—नाना माध्यम	६३
प्रचार के लिये 'काण्डारी'	६५
विरोधी शक्ति	६७
भिक्षा की झोली	७१
अन्तर्यामी	७५
अलौकिक	८०
महानिर्वाण का संकेत	८९
शेष अभियान	९०
अनिर्वाण ज्योति	९३

युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द

(श्री रणजीत घोष)

ग्रन्थ के सम्वन्ध में लेखक को स्वामी निर्मलानन्दजी द्वारा लिखा गया अभिमत—

आप के द्वारा लिखी 'युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द' की पांडुलिपि एक ही बैठक में पढ़कर समाप्त की। मुझे ग्रन्थ अच्छा लगा—सरल, सहज भाषा में श्री आचार्यदेव की जीवनी जनसाधारण के सामने आयेगी, उनके लिये उपयोगी ही होगी।

आप परम सौभाग्यशाली हैं। युग पुरुष के साक्षात् दर्शन आपने पाया है। शैशव-अवस्था से ही उनका स्नेह-प्यार व आशीर्वाद आप पर था। आपकी श्रद्धा एवं निष्ठा तर्कातीत है। संघ एवं संघनेता के विषय में आपकी दृष्टि स्वच्छ-परिच्छन्न रही है। इसी दृष्टि ने आपको आलोच्य ग्रन्थ की रचना के लिय प्रेरित किया है। इस चेष्टा का अभिनन्दन करने का सुअवसर आपने मुझे प्रदान किया है, आपका कृतज्ञ हूँ।

'भारत सेवाश्रम संघ' आज पूरे भारतबर्ष में एक परिचित नाम है। इस संघ के प्राण-प्रतिष्ठा के संबंध में, जनसाधारण के मन में जानने का आग्रह स्वाभाविक ही है। किन्तु इस प्रकार के साहित्य का थोड़ा अभाव दिखलायी पड़ता है। विभिन्न लेखकों की रचना के माध्यम से, विभिन्न दृष्टिकोणों से आचार्यदेव की जीवनी का लेखा-जोखा होना आवश्यक है। किन्तु अत्यन्त पीड़ा के साथ कहना पड़ता है कि देश के प्रसिद्ध लेखक, पत्रकार, दार्शनिक, चिन्तक, पण्डित, शिक्षकवृन्द इस ओर से सर्वथा उदासीन हैं। वे लोग सारा दायित्व सन्यासियों के ऊपर छोड़कर ही निश्चिन्त हो जाना चाहते हैं। पर ऐसा नहीं हो सकता। यह दायित्व उनका भी है। समस्त शिक्षाव्रतियीं के मध्य आपने इस तथ्य की उपलब्धि की है। आपका ग्रन्थ इस अभाव की पूर्ति की ओर बढ़ा हुआ चरण है। आपको मैं हार्दिक शुभकामना देता हूँ।

स्वामी निर्मलानन्द

भारत सेवाश्रम संघ
कोलकता-१९

लेखकीय वक्तव्य

युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्दजी महाराज के कर्ममय जीवन और उनकी अध्यात्म साधना का परिचय एक छोटे से ग्रन्थ में आबद्ध करना संभव नहीं है। उनके आविर्भाव से लेकर तिरोभाव तक, उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनायें, उनके द्वारा सम्पन्न कार्यों का परिचय, जन सामान्य तक पहुँचाना ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। युगाचार्य द्वारा प्रवर्त्तित कर्मचक्र, धर्मचक्र के विषय में, उनके संपर्क में आये श्रद्धेय सन्यासी महाराजों ने बहुत कुछ लिखा है। युगाचार्य जी के विराट भक्त तथा शिष्य-मण्डल के अतिरिक्त जो विराट जनसमुदाय हैं जिसके लिये भारत सेवाश्रम संघ एक परिचित नाम है, उसी जनसमुदाय के लिये इस ग्रन्थ की रचना की गयी है।

यहाँ पर एक दो बातें बताना अप्रांसगिक न होगा। जिस अवस्था की सारी बातें विस्मृति के गर्भ में समा जाती हैं, उसी शिशु अवस्था में देखी हुई एक छवि आज भी अम्लान भाव से मेरी-स्मृति में जगमगा रही हैं। वह छवि थी 'गेरूए वस्त्रधारी दिव्यकान्ति ज्योतिर्मय पुरुष' की। उस महिमामय तेजोद्दीप्त महापुरुष को अपने घर में कई बार देखा था। माँ के मुख से सुना था वे 'विनोद साधु' हैं; पिताजी 'विनोद ब्रह्चारी' कहते थे। स्थानीय लोग उन्हें इन्ही दोनों नाम से ही पहचानते थे। आश्रम के सन्यासी तथा जो व्यक्ति आश्रम से घनिष्ठ भाव से जुड़े हुए थे, उन्हें 'स्वामीजी महाराज' कहकर पुकारते थे। सारे-भारत में उनका परिचय था 'युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द' के नाम से।

मेरे पिता मदारीपुर सेवाश्रम के संपादक थे। शहर में नये आश्रम के बनने के समय स्वामीजी महाराज प्राय: ही मदारीपुर आते रहते थे। कई बार पिताजी के साथ मैं भी आश्रम में जाता था। दण्डवत करने पर मेरे मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते थे। उठ कर बैठने पर पीठ पर हांथ रख कर दों चार बातें भी पूछते थे। इसके बाद जो होता था वह था बचपन में सबसे लोभनीय। कोई भी फल या मिठाई हाथ में देते। शीतकाल में प्राय: ही खीर खाकर जाने का आदेश देते। प्रणाम करने पर किसी दिन भी खाली हाथ लौटा हूँ, ऐसा दिन मुझे याद नहीं। एकदिन नदी के घाट पर अपने जलयान 'काण्डारी' में स्वामीजी महाराज बैठेथे। पास पहुँचकर प्रणाम करते ही बोले, "खजुर के रस की खीर बनी है, खाकर जाना"। उस बचपने में किसका आकर्षण मुझे स्वामीजी के पास खींच ले जाता था—उनके दिये हुए प्रसाद का या स्वयं स्वामीजी महाराज के चुम्वकीय व्यक्तित्व का, कह नहीं सकता।

मदारीपुर शहर से कुछ दूरी पर है। बरिशाल के रास्ते पर स्थित आश्रम का सुन्दर परिवेश मुझें प्राय: ही आश्रम की ओर खींच ले जाता था। तब आश्रम के सन्यासीं

के साथ परिचय हुआ था। सन्यासीं के आन्तरिक व्यवहार, उनके प्यार से जब मैं आश्रम के साथ घनिष्ठ भाव से युक्त हो गया था, जुड़ गया था, तभी मेरे जीवन का चक्र घूमा। मदारीपुर की मिट्टी के गुण तथा अपनी पारिवारिक परंपरा के अनुसरण से राजनीति के वातायन में फंस कर, दल के काम, जेल, आदि में इतना व्यस्त हो गया कि आश्रम मुझसे छूट गया।

आश्रम से दूर हटने के बावजूद जब भी स्वामीजी महाराज शहर में पधारते, उन्हें प्रणाम कर आशीर्वाद लेने जरूर जाता था। वैशाखी पूर्णिमा के दिन, मदारीपुर के आश्रम में, उत्सव के अवसर पर, दो-तीन दिन, भोर से प्राय: सारादिन आश्रम में ही रहता था। प्रत्येक वर्ष ही इस अवसर पर स्वामीजी को खूब नजदीक से देखा। एकासन में घंटों बैठे, स्वामीजी का दर्शनार्थियों को दर्शन देना, आशीर्वाद देना—आरती के समय स्थिर दीपशिखा के समान समाधिवस्था में बैठे रहना—इन रूपों का वर्णन करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। इन सबके अतिरिक्त भी उनके महज, सुन्दर, अनेक पक्षों के भी दर्शन पाने का सौभाग्य मुझें मिला है। उनके जीवन के अनेक दुर्लभ रूपों के दर्शन पाने का भी सौभाग्यशाली रहा हूं।

मेरे राजनीति के साथ जुड़े रहने के बावजूद, मुझे स्बामीजी महाराज के बहुमुखी क्रिया-कलापों में, जिसने सबसे अधिक आकर्षित किया था, वह थी उनकी असाधारण संगठन शक्ति। मैंने जहाँ तक उन्हें समझा है, उनके सपनों का भारतवर्ष था हिन्दू भारतवर्ष। उनकी दृष्टि के सामने हिन्दू-भारत का गौरवशाली अतीत घूमता था। उनका जीवनादर्श और उनकी साधना हिन्दू ध्यान-धारणा के अनुसार ही थी। वे जानते थे कि भारत का प्राण अगणित अनुन्नत संप्रदाय के लोगों में हैं। ब्राह्मण शासित समाज ने, उन्हें मूल हिन्दू शरीर से अलग करके, हिन्दू समाज को ही खोखला बना दिया है। उस सुप्त शक्ति को जगाना होगा। उन्हें समाज के मूलस्त्रोत के साथ जोड़ना, समाज में नव जीवन का संचार करना ही स्वामीजी महाराज का अन्यतम लक्ष्य था। इसी लक्ष्य को रूपायित करने के लिये ही उन्होंने हिन्दू-समाज-समन्वय और हिन्दू-मिलन मन्दिर निर्माण का एक व्यापक आन्दोलन शुरू किया था।

मुझे याद आ रही हैं, लीग शासन के उन अंधकार-पूर्ण दिनों की बातें। पूर्वबंगाल (बांगलादेश) के गांव-गांव में हिन्दू नर-नारी कितने आतंक से भरे असहायावस्था में दिन काट रहे थे। जीवन, धन, मान, नारी की इज्जत सब कुछ उन दिनों विपन्न था। उन दु:स्वप्नों के दिनों में स्वामी जी महाराज अपनी सन्यासी-सेना के साथ गली-गली, गांव-गांव, शहर-शहर, अपनी अभयवाणी द्वारा लोगों में नवजीवन

फूंक रहे थे। अन्याय, अत्याचार, प्रताड़ना से मुक्त होकर संघबद्ध रूप से उठ खड़े होने की प्रेरणा जगा रहे थे। गांव-गांव में मिलन-मन्दिर की स्थापना द्वारा संघबद्ध होकर जीने की राह दिखा रहे थे। उस समय देश में जो 'मत्सन्याय' (बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, वाला न्याय) चल रहा था, उस समय स्वामीजी महाराज हिन्दुओं को संघ के माध्यम से एकता के बन्धन में बंधने की प्रेरणा दे रहे थे। हिन्दुओं को जगाने में, उनके अवदान का मूल्यांकन करना मेरे वश से बाहर है। जीने का अधिकार सभी संप्रदायों को है। पूर्वबंगाल के हिन्दुओं की रक्षा के लिये स्वामीजी महाराज ने पहले से ही सभी को आसन्न विपदा के प्रति सावधान कर दिया था। एक मात्र डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी को छोड़कर और कोई नेता उनकी सतर्क वाणी का तात्पर्य न समझ पाया था। इसका फल क्या भुगतना पड़ा, यह हम सब जानते ही हैं।

मैं किसी व्यक्ति से अथवा संघ से दीक्षित शिष्य नहीं हूँ। बाल्यकाल से ही स्वामीजी महाराज के प्रति श्रद्धाशील हूँ। मैं उनका और उनके द्वारा प्रतिष्ठित संघ का अनुरागी हूँ। जब 'स्वामी प्रणवानन्द कौन थे ?' इसका उत्तर देते समय कहता हूँ कि 'आप थे भारत सेवाश्रम संघ के प्रतिष्ठाता', तो मन न जाने किस अव्यक्त वेदना से भर उठता है। जानता हूँ, अपने द्वारा सृजित इस संघ के विराट स्वरूप में वे अमर रहेगें। यह भी जानता हूँ कि भारत सेवाश्रम संघ आज भारतबर्ष में प्रख्यात है। फिर भी मन के कोने में यह इच्छा दबी हुई है कि इस युगपुरूष के विषय में लोग अधिक जानें। इसी इच्छा से यह छोटा सा ग्रन्थ, उन्हीं के श्रीचरणों को समर्पित है। इस पुस्तक के माध्यम से मैं अपनी श्रद्धांजलि उनके श्रीचरणों में अर्पित कर रहा हूँ।

इस ग्रन्थ की रचना के लिये प्रयोजनीय तथ्य मैंने श्रीमत् स्वामी वेदानन्दजी द्वारा रचित "श्री श्री युगाचार्य जीवन चरित" तथा श्रीमत् स्वामी निर्मलानन्दजी द्वारा संपादित "श्री श्री शतरूपे शतमुखे प्रणवानन्द " (तीन खण्ड) से लिये हैं। श्रीमत् स्वामी निर्मलानन्दजी ने दया करके मेरी इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़ कर यथावश्यक संशोधन कर दिया है, इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। पुस्तक की प्रेस-कांपी, श्रीमती ज्योत्सना दास, एम. ए. बी. टी ने बना दी—और इसे प्रकाशित किया श्रीमान अमरेन्द्र चक्रवर्ती ने। इसके लिये मैं उन सबका आभारी हूँ।

विनीत

रणजीत घोष

शिवरात्रि, १३९०

४/२९, नेताजीनगर,

कलकता-४०

भूमिका

हमारी जन्मभूमि पुण्यभूमि भारतवर्ष है। इस विशाल राष्ट्र के उत्तर में तुषारावृत हिमालय, दक्षिण में असीम महासागर है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले इस विस्तृत देश में नाना जाति, नाना धर्म और नाना भाषाभाषी कोटि-कोटि लोग रहते हैं। आहार-विहार, आचार-विचार में पार्थक्य रहने पर भी हमारा परिचय एक है—हम हैं भारतवासी। इस पुण्य देश के ऊपर विधाता की करूणधारा जिस प्रकार अजस्र रूप से वर्षण हुई है उसी प्रकार इसे विधाता के रौद्र रूप का भी सामना करना पड़ा है।

प्रति वर्ष इस देश के किसी न किसी प्रान्त में, कोने में, विधाता की कोपदृष्टि के फलस्वरूप बाढ़, दुर्भिक्ष, सूखा, भूकम्प आदि दुर्योग दिखलायी पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त स्वयं मनुष्य की अशुभ बुद्धि द्वारा संचालित दंगा-फसाद तो होते ही रहते हैं। इन विपत्तियों के समय, उस अंचल विशेष के असहाय, विपन्न, दुखी नर-नारियों के कष्टों को कम करने के लिये, उनके साथ खड़ा दिखता है—सर्वत्यागी सन्यासियों का एक दल। वे लेकर आते हैं—शिशूओं के लिए दूध, भूखों के लिए अन्न, लज्जा ढंकने के लिए वस्त्र, रोगियों के लिये दवा। निराशा के अन्धकार में आशा की ज्योति बन कर सबसे पहले दौड़े आते हैं—ये सदा ही प्रसन्न मुख रहने वाले गैरिक वस्त्रधारी सन्यासी। भारत के सुदूर दुर्गम अंचलों में, दुःख कष्ट के दिनों में, दुःखी मानवता का दुःख दूर करने को उद्यत, इन वीर मृत्युंजयी सन्यासियों को देखा जा सकता है। देश विभाजन मे लाखों लोग बेघरबार हो गये थे युद्ध में असंख्य लोग विपदग्रस्थ हुए थे। तीर्थस्थानों में तीर्थयात्रियों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा था। कई प्रकार से उत्पीड़ित हिन्दूयों को आपने पड़ोषियों द्वारा ही प्रतारित किया गया था। प्रत्येक बार उनके दुर्दिन में सहायता करने के लिये आगे बढ़ आया था, यह सन्यासी दल।

विपत्ति के समय लोगों के पास आकर खड़े होते हैं; सहायता के लिये हाथ बढ़ा देते हैं; हृदय में साहस का संचार करते हैं; भरोसा-विश्वास देते हैं; जिन्हें देखते ही लोगों का निराश हृदय आशा से भर उठता है—ये कौन हैं ? सर्वत्यागी इस सन्यासी वर्ग का संगठन किसने किया है ? किस महापुरुष की प्रेरणा से ये मनुष्य के दुःख के समय दीनबन्धु के रूप में आ खड़े होते है। जो महापुरुष इस सन्यासी संघ के प्रतिष्ठाता हैं, जो आज अगणित भक्तों के गृहों में शिवरूप में पूजे जाते हैं, वें हैं—युगाचार्य श्रीमत् स्वामी प्रणवानन्द जी महाराज ?

सुविख्यात भारत सेवाश्रम संघ के प्रतिष्ठापक आचार्य श्रीमत् स्वामी प्रणवानन्द जी की जीवन कथा संक्षेप में सुनाने के लिये ही यह सामान्य चेष्टा है।

आविर्भाव

उस दिन पूर्णिमा थी। पृथ्वी पर प्रकाश की धारा बह रही थी। सारा आकाश चाँद के स्निग्ध प्रकाश से झलमला रहा था। उस दिन, उस माघी पूर्णिमा की तिथि को एक साथ दो चाँदों का उदय हुआ था। एक ने आकाश को प्रकाशित किया तो दूसरे ने इस पृथ्वी पर एक माँ की गोद को। माता शारदा देवी की गोद उस दिन जिस स्निग्ध आलोक से भर उठी थी उस चाँद ने अगणित भक्तों के हृदय को भी आलोकित कर डाला था। लाखों भक्तों के हृदय के अन्धकार को दूर कर दिया था। तप्त हृदय को शीतल करने के लिये उनकी करूणाधारा का वर्षण हुआ था। आर्त पीड़ितों को उन्होंने आश्रय दिया था और अपनी-अभय वाणी से उन्हें अभय दान दिया था।

पूर्वबंगाल का एक गाँव—आम, जामुन, कटहल, लीची से घिरे ग्राम के चारों ओर शस्य श्यामल भूमि। वर्षा के समय नदी अपने किनारे छोड़ गांव को जल से प्लावित कर देती। ग्रामवासी नौका में यातायात करते। वर्तमान बंगला देश के फरीदपुर जिले के महकमे मदारीपुर में ऐसा ही एक गांव है बाजितपुर। कुमार नदी से प्रायः एक मील की दूरी पर बसा है यह गांव। कुमार नदी से एक छोटी नहर आड़ी तिरछी होकर गाँव के बीच से बहती है। वर्षा में इस नहर से ही नौका द्वारा लोगों को यातायात करना पड़ता है।

बाजितपुर संभ्रान्तों का गांव था। इसमें कई संभ्रान्त कायस्थ एवं ब्राह्मण परिवार रहते थे। इसी गाँव में विष्णुचरण भुंइया एक विशिष्ट व्यक्ति थे। विष्णुचरण अत्यन्त तेजस्वी और रोबदार थे। ग्रामवासी उनकी काफी इज्जत करते थे। बाहर से कठोर प्रकृति के प्रतीत होने वाले विष्णु भुंइया का हृदय अत्यन्त कोमल था। दूसरों के दुःख से वे सहज ही कातर हो उठते थे। वे जमीन्दार के मुंशी थे। किन्तु संपत्ति को लेकर उसी जमीन्दार से भुंइयाजी का मामला-मुकद्दमा हो गया। यह लड़ाई चली थी बीस वर्ष। चारों ओर से विपन्न होने पर भी विष्णुचरण ने हार नहीं मानी थी। सत्य का पथ, न्याय का पथ, पकड़े लड़ते रहते थे। दुःख के दिनों में उनके एकमात्र आश्रय थे नीलकंठ शिव। शक्तिशाली के अत्याचार से दीन भक्त की रक्षा करने के लिये महादेव शिव का आसन डोल उठा था।

विष्णु भुँइया की पत्नी का नाम शारदा देवी था। सेवा में, भक्ति में, सरलता में शारदा देवी अतुलनीय थीं। उनके प्राणों में कोमलता थी। वे शुचिता और पवित्रता की प्रतिमूर्ति थी। एक दिन शारदा देवी ने सपना देखा कि कैलाशपति शिव शिशु रूप में उनकी गोद में लेटे हुए हैं। आनन्द और विस्मय के कारण उनकी नींद टूट गयी।

उन्होंने शिव की आजीवन सेवा की थी, इतने दिनों बाद भगवान की कृपा मिली। क्या सच ही शिव उनके घर आयेंगे? उन्होंने सारी बात पति से कह सुनायीं। विष्णु चरण आश्चर्य-चकित नहीं हुए। उन्होंने भी सबसे छिपकर, भूखे रहकर, जागरण करके, शिव को पाने की कठिन तपस्या की थी।

जगत के कल्याण कर्ता महादेव शंभु ने इनकी महातपस्या से प्रसन्न हो कर उनसे कहा था, 'मैं पुत्ररूप में तुम्हारे घर आ रहा हूँ।' शारदा देवी को स्वप्न में उन्होंने अपने आगमन का ही पूर्वाभास दिया था।

देवाधिदेव महादेव की असीम करूणा के बारे में सोच-सोच कर स्वामी-स्त्री दोनों की आँखों से आनन्दश्रुओं का वर्षण होने लगता। इस पूण्य भारतभूमि पर मानव-मुक्ति के लिये, दुष्टों के दमन के लिये, शिष्टों की रक्षा के लिये, युग-युग में भगवान ने अवतार ग्रहण किया है। विश्व के कल्याण के लिये वे फिर विष्णुचरण के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हो रहे हैं—यह तो उनकी जीवमात्र पर असीम करूणा का फल है। पति-पत्नी दोनों ने इस आनन्द को अपने हृदय में ही छिपाये रखा। व्याकुल, उत्कण्ठित हो वे एक-एक घड़ी गिनते थे कि कब भगवान शंकर उनके घर आयेंगे। अन्ततः दीर्घ प्रतीक्षा का अन्त हुआ—उस महापुरुष के अवतार लेने का शुभलग्न आ पहुँचा। माघी पूर्णिमा के पुण्य दिन भगवान शंकर विष्णु चरण की पत्नी की गोद में मानव शिशु के रूप में अवतीर्ण हुए। माघी पूर्णिमा की पुण्यतिथि—सारा गांव हरिनाम के संकीर्तन में मस्त था। उस दिन महिलाओं ने विष्णुचरण के घर में उलुक-ध्वनि (बंगाल में किसी भी शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा की जाने वाली एक विशेष ध्वनि) की। मंगल शंख बज उठा। हवा में वहकर दूर-दूर तक एक महा अवतार का संवाद फैल गया।

१८९६ ई०, माघी पूर्णिमा के दिन, बुधवार को माता शारदा देवी की गोद में जिस शिशु का आगमन हुआ वह एक विचित्र शिशु था। जन्म के समय बच्चे का रोना सुनने के हम सभी अभ्यस्त हैं। यह विचित्र बात थी कि यह बच्चा जन्म के समय रोया नहीं। बालक के जन्म के बाद ही विष्णुचरण के जीवन में भी परिवर्तन आया। बीस वर्ष के मुकदमे के बाद वे जमीन्दार से जयी हुए। उनके संसार में लक्ष्मीजी की अयाचित कृपा होने लगी। दीर्घ मामलों के बाद पुत्रजन्म पर जय की सूचना मिलने के कारण उन्होंने पुत्र का नाम रखा 'जयनाथ'। बुधवार को जन्म हुआ था इस कारण घर परिवार के लोग इस बालक को 'बुधो' कह कर पुकारते थे। शिशु धीर-धीरे बढ़ने लगा। लड़के का अन्नप्राशन धूमधाम से किया गया। इस समय इनका नामकरण भी हुआ और नाम रखा गया 'विनोद'।

शिशु भोलानाथ

बच्चे साधारणतः चंचल होते हैं। यह तोड़ना, वह फेंकना, बात-बात पर जिद करना, उनका स्वभाव होता है। जिसे पूरी न होने पर शुरू होता है—उनका गला फाड़ कर रोना। बच्चों की ये क्रियाएं स्वाभाविक ही हैं। माँ शारदा देवी के बेटे का व्यवहार बिलकुल अलग प्रकार का था। शांत स्थिर बच्चा था। सिर पर घने घुंघराले केश, हृष्ट-पुष्ट, हँसी से भरा मुख—देखते ही गोद में ले लेने की इच्छा हो उठे। बच्चे को देख कर ही ऐसा लगा कि जन्म से ही स्वाभाविक निरवित थी। एक दिन घर की दासी ने जबर्दस्ती बच्चे को गोद में उठा लिया। उस दासी का चाल-चलन अच्छा न था। उसके गोद में उठाते ही बच्चे के सारे शरीर पर चकते निकल आये। इसके बाद से माँ शारदा देवी जिस-तिस को बच्चे को गोद में उठाने न देतीं।

सबका कहना था कि ऐसा बालक तो देखा ही नहीं। जरा भी चंचलता नहीं, जरा भी बालोचित शरारत नहीं। चुपचाप एक स्थान पर बैठे हैं तो वहीं स्थिर बैठे ही हुए हैं। वह मानों इस लोक का है ही नहीं। इतना सा बच्चा, उसे क्या भूख-प्यास भी नहीं सताती ? और बच्चों के समान खाने को लेकर जिद तक नहीं करता। उसे जबर्दस्ती खिलाना पड़ता था। परिवार के परिजन, पड़ोसी सब बड़े दुःखित होकर कहते कि विष्णु भुँइया का बेटा क्या भोंदू निकलेगा ? यह बच्चा तो अन्य बच्चों के समान नहीं है। सारा दिन न जाने किस चिन्ता में डूबा रहता है। इस उम्र में इस बच्चे के सिर पर न जाने कैसा भार है जो सारा दिन सोच विचार में डूबा रहता है ? कभी-कभी विनोद कहीं गायब हो जाता। चारों ओर खोजने पर वह किसी निर्जन स्थान के कोने में चुपचाप बैठा हुआ मिलता। उस ध्यानस्थ शिशु को देखकर लगता मानों ध्यानस्थ भोलानाथ बैठे हुए हैं। अवसर मिलते ही बालक अपने बगीचे के किसी निर्जन स्थल पर, पेड़ के तले अपने ध्यान में लीन बैठा रहता। उसके इस अद्‌भुत आचरण को देखकर कई लोग कई तरह की बातें करते। साधारण लोगों की चाहे जो भी धारणा रही हो, विष्णुचरण किन्तु जरा भी विचलित नहीं होते। वे सोचते कि शिव अंश से जिसका जन्म 'शिव' के लिये हुआ है उसका भावाविष्ट रहना ही स्वाभाविक है।

मनमोहक शान्त बालक जब ध्यानमग्न होकर बैठा रहता तब लगता मानों स्वयं भोलानाथ शिव तपस्या कर रहे हों। जिन्होंने भी विनोद का समाधि में लीन रूप देखा उन सब को ऐसा ही लगा मानों समाधि में लीन शिव हों। विनोद के इस रूप की चर्चा ग्राम-ग्राम में फैल गयी। लोगों में प्रचलित हो गया—विष्णु भुंइया पर महादेव की कृपा हुई है जिसके फलस्वरूप एक देव-तुल्य बालक का आविर्भाव हुआ है।

अलौकिक दर्शन

विनोद के विभिन्न क्रिया-कलापों से लोगों के मन में यह धारणा पुष्ट होती थी कि विनोद एक असाधारण बालक है। बालक के अदभुत आचरण और अलौकिक दिव्य रूप के कारण उनके अपने परिवार के बीच भी यह धारणा दृढ़ होती जा रही थी। घर के बीच एक चबूतरा था। चबूतरे के एक किनारे तुलसी का चौरा था। तुलसी का चौरा रोज साफ किया जाता। दिन रात संध्याबाती की जाती। घर से निकलने से पहले घर के लोग चौरे पर माथा टेकते, फिर काम पर जाते। बचपन से ही विनोद यह सब देखते। एक छोटा सा पौधा—उसकी इतनी भक्ति, इतना यत्न, इतनी सेवा—इन सबका कारण विनोद को समझ में नहीं आता। विनोद ने सोचा माँ से पूछेगा कि तुम रोज स्नान करके तुलसी में पानी क्यों डालती हो? संध्या को दिया जलाती हो, भक्तिभाव से प्रणाम करती हो; ऐसा क्या है इस नन्हे से पौधे में कि घर-घर में इसका इतना आदर होता है? इस प्रश्न ने बालक के मन में जिज्ञासा पैदा कर दिया था। मन में एक संशय ने जन्म ले लिया था। इस संशय को दूर करना ही होगा। इसका रहस्य जानना ही होगा। यह क्या केवल संस्कार है? या इस विश्वास के पीछे कुछ सत्य है? बालक मन यह रहस्य जानने के लिये व्याकुल हो उठा।

एकदिन तुलसी पौधे के सामने विनोद अनमने से खड़े थे। हो सकता है, तुलसी के रहस्य के विषय में ही सोच रहे हों? उस अन्यमनस्क अवस्था में ही उन्होंने थूक फेंका, कुछ छींटें तुलसी पर भी पड़े। इसके बाद एक अदभुत काण्ड हुआ। इतना शक्तिशाली बालक, जिसे किसी का भय डर न था, जो निर्जन स्थान पर चुपचाप घंटों बैठा रहता था, तुलसी की ओर देखते देखते अचानक अचेत हो गया। जो उनके पास खड़े थे वे दौड़कर उसकी माँ को खबर देने दौड़े—बुधो की माँ जल्दी आओ, बुधो बेहोश होकर गिर पड़ा है। सब लोग लड़के को घर में उठा कर लाये। सिर पर पानी डाला, शरीर पर हाथ फिराते ही बच्चा स्वस्थ हो गया। माँ ने पूछा, "बुधो क्या हुआ था जो तुम इस तरह बेहोश होकर गिर पड़े?" कुछ भी नहीं हुआ था, थूक फेंकते समय ध्यान न रहा। तुलसी पर जा पड़ा, तुलसी से एक आदमी निकल आया, दिखने में कितना सुन्दर, उसने मुझे लगातार देखा और फिर पता नहीं मुझे क्या हो गया।

माँ ने विनोद से कुछ न कहा। पर समझ गयीं तुलसी के रक्षक देव ने स्वयं विनोद को दर्शन दिया था। उस अपरूप शालिग्राम को देख कर ही विनोद संज्ञाशून्य हो पड़े थे। परवर्ती काल में जब वे आचार्यत्व के पद पर सुशोभित हुए थे तब वे अपने भक्तों को तुलसी का माहात्म्य समझाते और उसका आदर करने के लिये कहते।

जीव-प्रेम का अटल संकल्प

विनोद का मन अत्यन्त कोमल था। बचपन से ही वह सबसे स्नेह करते थे। किसी का कष्ट उनसे देखा न जाता था। उनका यह प्रेम भाव केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं था, वह जीवमात्र में फैला हुआ था। मूक प्राणियों के कष्ट से भी वे दुखी हो उठते थे। उस समय वर्षा का मौसम था। नदी-नाले, मैदान, तालाब, सब जलमग्न थे। इस समय बच्चे-बूढ़े मिलकर नौका पर सवार मछली पकड़ते। एक दिन विनोद के बड़े भैया जाल लेकर निकल पड़े मछली पकड़ने, साथ में नौ वर्षीय विनोद भी था। गांव के लड़के आठ-नौ वर्ष की उम्र में नौका चलाने लगते हैं। इसी कारण विनोद को बड़े भैया का साथ देना पड़ रहा था। उन्हें नौका चलाना और मछली का पहरा देना होगा। भैया के जाल में एक बड़ी शोल मछली फँसी। मछली को नाव के तल में रख भैया ने विनोद से कहा "हंसुआ से मारकर मछली पर काबू करो नहीं तो यह फिर से नदी में चली जायेगी।" भैया हुकम देकर फिर से मछली पकड़ने में लीन हो गये। कोई दूसरा बच्चा होता तो हंसुआ मारकर मछली को तत्काल ही ठण्डा कर देता। जीवित शोल मछली को मारे बिना नौका में अटका कर रखना असंभव कार्य है। किन्तु विनोद मछली को काबू में रखे तो कैसे ? उसकी छटपटाहट देख वह स्वयं बेकाबू हुआ जा रहा था। उसका मन मछली की तड़पाहट से आकुल-व्याकुल हो रहा था। उनके मन में मछली को मुक्त करने की प्रबल इच्छा उठ रही थी, पर भाई के डर से मछली को नदी में डाल भी नहीं पा रहा था। जानते थे, छोड़ने पर उनके सिर की खैर नहीं। साथ ही मारकर मछली को काबू में भी नहीं कर पा रहे थे। मछली की छटपटाहट से उनका मन भर आ रहा था। मछली फिर से नदी में कूद जाये तो उसमे फिर से प्राण भर उठे। छटपटाती मछली अचानक एक झपाके से नदी में कूद गयी। चलो खैर हुई। पर खैर किसकी ? विनोद की या मछली की ? विनोद ने ही खैर मनायी कारण मछली की तड़पन से उनकी श्वास रूद्ध हुई जा रही थी। जीवों के प्रति दया का भाव निवोद ने पुस्तक पढ़कर नहीं सीखा था। सब जीवों के प्रति प्रेम का भाव लेकर ही वे जन्मे थे। इसी कारण उस दिन भैया की क्रोध से भरी डाँट ने भी उनपर कोई असर न डाला था।

प्राय: घरों में पालतू जीव पाले जाते हैं। कुत्ते बिल्ली रंग बिरंगी चिड़िया, तोता-मैना आदि बड़े स्नेह, यत्न से पाले जाते हैं। परंतु गेहुँअन सांप का बच्चा अगर कोई देख ले तो भय से, घृणा से वह आतंकित हो उठेगा। एकदिन विनोद ने देखा घर के पास बेंत के एक झुड़मुट में गेहुँअन सांप का बच्चा मृतप्राय अवस्था में पड़ा हुआ है। विनोद ने उस संपोले को यत्न से उठाया, दूध पिला-पिला कर उसके प्राण बचाये और पुष्ट हो जाने पर उसे जंगल में छोड़ दिया।

आज आचार्य स्वामी प्रणवानन्दजी द्वारा दीक्षित उनके संतान सारे भारतवर्ष में आर्त जनों की, पीड़ित जनों की सेवा करते फिर रहे हैं। आज सारे भारतवर्ष में जिस करूणाधारा का वर्षण हो रहा है वही धारा शिशु विनोद के हृदय में फल्गुधारा के समान प्रवाहित हो रही थी। उसी क्षीण फल्गुधारा ने आज हड़हड़ाती विराट नदी का रूप धारण किया है।

पर द:खकातर विनोद का मन फूल सा कोमल था। लेकिन अपने संकल्प पर वह पहाड़ की तरह अटल एवं दृढ़ थे। बचपन में, विनोद में एक अजीब सी जिद थी। जिस काम में हाथ लगाएंगे उसे पूरा किये बिना वे मानेगें नहीं। इस जिद के कारण ही, इस दृढ़प्रतिज्ञ प्रवृत्ति के कारण ही, विनोद ने अपनी सारी प्रचेष्टाओं को साकार किया था। उनके बचपन की छोटी-छोटी घटनाओं द्वारा ही उन के महिमामय भविष्य का संकेत हम पाते हैं।

कुछ दिनों से एक नेवले ने भंड़या परिवार के चौके में उत्पात मचाया हुआ था। मौका पाते ही वह मछली लेकर भागता, दूध पी जाता, सारे खाने में मुँह डाल देता—सारा भोजन नष्ट हो जाता। उसके उत्पात से तंग आकर माँ ने विनोद से कहा इस दुष्ट को पकड़ नहीं सकते? माँ ने तंग आकर कहा है, माँ को इस विपद से छुटकारा दिलाना ही होगा। विनोद दौड़े नेवले के पीछे, उसे पकड़ने। गाँवों में, फन्दा डालकर या दरवाजा बन्द करके नेवले को पकड़ा जाता है। किन्तु नेवले का पीछा करते हुए जंगलों में नेवले को पकड़ना असाध्य कार्य है। किन्तु विनोद के ज्ञान में असाध्य नामक कोई शब्द था ही नहीं। नेवला प्राणों के भय से दौड़ रहा था विनोद उसे पकड़ने की धुन में उसका पीछा कर रहा था। बेंत का काँटा उसके पाँव में चुभ गया, झाड़-झंखाड़ से देह लहू-लुहान हो गया, इसकी उसे कोई परवाह नहीं। माँ ने कहा है इस विपद को पकड़ कर ला, तो इसे पकड़ना ही होगा। असाध्य कार्य को साध्य करके ही उसने दम लिया। उस नेवले को पकड़ कर माँ के सामने ले आये। बाद में जंगल में उसे छोड़ भी आये।

केवल मन की इच्छा से, दृढ़ संकल्प से कि मैं यह करूंगा, मैं कर पाउंगा—सारे असाध्य कार्यों को संभव किया जा सकता है। परवर्ती काल में आचार्य जी ने इसी प्रकार की एक कहानी अपने एक संघबन्धु को सुनायी थी।

पूर्वबंगाल में वर्षा से गांव के सारे रास्ते पानी में डूब जाते हैं। तब नौका ही यातायात का एकमात्र अवलम्बन होता है। प्राय: प्रत्येक गृहस्थ के घर में एक, और सम्पन्न गृहस्थ के यहाँ दो नौका रहता ही था। एक दिन खूब भोर के समय विष्णु भुँइया को मदारीपुर, काम से जाना था। उन्हें लौटने में रात हो जाने का अंदेशा था।

काम करने वाले इतनी सुबह आये नहीं थे। जाते समय विनोद से कह गये कर्मचारियों के आते ही तालाब से नौका निकलवाकर रखें। अपने ही भाव में मग्न विनोद पिता का यह आदेश भूल गये। रात गहरा गयी, कर्मचारी काम करके अपने घरों को लौट गये। विनोद अपने कमरे में अपने ही विचारों में लीन थे कि हठात उन्हें ध्यान आया, पिताजी ने तो लोगों द्वारा नौका निकलवाने के लिये कहा था। मैं तो भूल ही गया, काम तो हुआ ही नहीं। दूसरे दिन पिताजी भोर में पूछेंगे तो क्या कहूँगा? अब क्या किया जाए? कल लोगों के आते ही पहला काम यही करूंगा। पर मन न माना, पिताजी ने एक काम दिया वह भी न करवा सका मैं। तुरंत ही बिस्तर से उठ पड़े विनोद। सीधे चले गये तालाब की ओर। नौका वे अकेले ही निकालेंगे। पूरी घटना सुनाते हुए उन्होंने कहा था, "शिरीष बाबू! जिस नौका को पाँच-छह जन मिलकर निकालते थे उसे मैंने अकेले ही निकाला था। काम असाध्य था यह जानते हुए भी मैने ठान लिया था कि यह काम मझे करना ही होगा। उस दिन अपनी इच्छाशक्ति के बलपर ही मैं पाँच-छह आदमियों का काम अकेला ही कर पाया था। मर जाऊँगा पर हार नहीं मानूंगा।" विनोद हारे नहीं थे। इच्छा शक्ति अगर दृढ़ हो तो कितना ही कठिन काम क्यों न हो, किया जा सकता है—इसकी पुष्टि विनोद के जीवन में घटित कई दृष्टान्तों द्वारा की जा सकती है।

दृढ़ संकल्प तथा अदम्य इच्छाशक्ति के लिये बाद में आचार्य देव ने कहा था, "संकल्प में जो सुदृढ़ है, प्रतिज्ञा में जो अविचलित है, सारी सिद्धियां उसके हाथ में आ जाती हैं। संकल्प के पथ से हटने से पहले भले ही प्राण चले जायें। यह उपदेश केवल मात्र कोरा उपदेश ही नहीं है, उन्होंने अपने कार्य से भी इसे सिद्ध कर दिखलाया। अपनें जीवन में वे कभी भी संकल्प से हटे नहीं। कुछ करना है—यह संकल्प लेने पर, जब तक काम पूरा नहीं हुआ तब तक उससे दूर नहीं हटे। किशोर अवस्था में भी उन्होंने वह कार्य अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्प के बल पर किया था। उस ओर संकेत करते हुए ही उन्होंने संकल्प के महत्व पर प्रकाश डाला था। जब एक बार संकल्प ले ही लिया तो काम कितना ही कठिन क्यों न हो, उसकी राह में कितनी ही बाधाएं क्यों न आयें, जो संकल्प ले लिया उसे पूरा करने में अपने प्राणों की बाजी भी लगानी पड़े तो लगा दूंगा।" यही था उनका उपदेश।

बालक विनोद

विनोद को पाठशाला में भर्त्ती कराया गया। और सभी बच्चों की तरह, शितल पाटी बगल में दबाये वे भी पाठशाला जाते पर उनका मन पड़ाई की ओर अधिक न

लगता था। सब समय न जाने किस चिन्ता में मग्न रहते ? साधारण बालक के समान लिख-पढ़कर नौकरी करेंगे, ब्याह करकें घर संसार बसाएंगे, इसके लिये तो विनोद बने नहीं थे। उनके जीवन का तो कुछ और ही उद्देश्य, कुछ और ही कर्म था। इसीसे उनकी चाल-चलन अन्य साधारण बालकों से कुछ हटकर था। उन्हें तो समाज का गठन करना था, इसीसे उनकी चिन्ता धारा जनसाधारण से अलग थी। छोटे बच्चों के साथ मिलजुल कर खेलना, हो हल्ला करना, इन सबमें विनोद न थे। उन्हें एक स्थान पर चार पांच घण्टे बैठा हुआ देखा जा सकता था। यह बालक किसके ध्यान में मग्न रहता है ? किसकी याद में वह अपने बाह्यज्ञान को भुला बैठता है ? उन्हें ध्यानस्थ अवस्था में देख कर लगता था बालक विनोद इस देह में रहते हुए भी विदेह हो गये हैं। किसी सुदूर लोक में उसका मन जम कर बैंठ गया है।

धीरे-धीरे विनोद बड़े होने लगे। पाठशाला से उत्तीर्ण हो कर गांव के हाई स्कूल में भर्ती हुए। यहाँ भी वही एक भाव—पढ़ना होता है इसी लिये पढ़ रहे हैं, पढ़ने की ओर विशेष मन नहीं है। वह तो मानो किसी दूसरे लोक का वासी था। व्यर्थ की एक भी बात वे न करते थे। स्कूल में चुपचाप एक निर्दिष्ट जगह पर जा बैठता, कक्षा में पढ़ाई हो रही है, सामने पुस्तक खुली हुई है, किन्तु उसका मन कहाँ है ? उस किताव में, पढ़ाई में ? कहा नहीं जा सकता, कहाँ है ? सब समय आत्मलीन भाव। स्कूल की छुट्टी होने पर सारे बच्चे हो हल्ला करते हुए अपने-अपनें घरों को दौड़ पड़ते। पर विनोद—उसे तो इसका भी होश नहीं रहता। वह अपने आप में लीन किसी दूसरे लोक में ही खोया बैठा रहता। हठात जब इस लोक में आता और कक्षा खाली देखता तो वह भी धीरे-धीरे उठकर घर की और चल देता।

विनोद पढ़ने में रूचि नहीं रखते, इस कारण क्या उनके शिक्षक उन पर क्रोध करते या उन पर अप्रसन्न रहते ? ऐसी बात नहीं थी। वे अपने इस असाधारण छात्र को विशेष स्नेह देते थे। उनके व्यवहार के प्रति दूसरे बच्चों के मन में श्रद्धामिश्रित प्रेमभाव था। इस कम बोलने वाले लड़के के व्यक्तित्व में न जाने कैसा चुम्वकीय आकर्षण था जो सबको अपनी ओर खींच लेता था। सबके मुख पर उसी की प्रशंसा रहती। छात्र-शिक्षक सब उसके गुणों पर मुग्ध थे। 'अच्छे व्यवहार' (good conduct) का पारितोषिक विनोद के अतिरिक्त और कोई ले जायेगा, यह असंभव था।

विनोद का भोजन भी बचपन से अत्यन्त संयमित था। विष्णु भुँइया संपन्न व्यक्ति थे। उनके घर में प्राय: खाने-पीने का आयोजन होता रहता था। घर के सब लोगों को मांस-मछली में विशेष आसक्ति थी। किन्तु विनोद छुटपन से ही मांस

मछली के प्रति अनासक्त, उदासीन थे। उबला हुआ आलू का चोखा उनके लिये पर्याप्त था। एक दिन सबके जोर देने पर उन्होंने मछली खायी, खाते ही अस्वस्थ हो गये। इसके बाद से खाने को लेकर कभी किसी ने उन पर जोर नहीं डाला। एक दिन घर के तालाब से एक बड़ी मछली पकड़ी गयी। सब लोग उनसे जबर्दस्ती करने लगे कि उन्हें मछली खानी ही पड़ेगी। विनोद ने बार, बार मना किया—पर घर के लोग न माने। आखिरकार उनकी जिद्द के सामने वे झुक गये और इच्छा के बिरूद्ध, बड़ी ही अनिच्छा से उन्होंने उस दिन मछली खायी। थोड़ी देर बाद ही उन्हें उल्टियां (कै) लग गयी। इसके बाद और कभी किसी ने उनसे मछली खाने का हठ नहीं किया।

घर के सब मांस-मछली भात खाते हैं और उनका दुलारा नमक भात या उबला आलू भात खाता है। मांस-मछली न सही, दूध-धी तो खा ही सकता है। बेटा तो वह भी नहीं खाता। इसके लिये माता-पिता दुखित रहते थे। माँ शारदा देवी ने अपने मन का दुख अपने कुलपुरोहित महेन्द्र चक्रवर्ती को बतलाते हुए अनुरोध किया कि वे ही विनोद को दूध-धी खाने के लिये कहें। पुरोहित माँ के मन के कष्ट को समझते थे। अत: उन्होंने विनोद को थोड़ा दूध लेने का परामर्श दिया। उनके परामर्श के उत्तर में विनोद नें कहा था, "चक्रवर्ती महाशय दूध में अधिक उफान आने पर दूध बाहर बह कर गिर जाता है। मैं अपनी शक्ति का संचय कर रहा हूँ। अधिक दूध-घी खाने से उत्तेजना की सृष्टि होती है, जिससे शक्ति का क्षय होता है। दूध-धी न लेकर भी मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं एक लात मारकर इस दालान को फोड़ सकता हूँ।" चक्रवर्ती महाराज को समझ में आ गया था, सब शक्ति का मूल है संयम और ब्रह्मचर्य।

नींद—वह भी विनोद की आंखों में नहीं थी। आजन्मसिद्ध संकल्पशील ब्रह्मचारी के पास नींद भी आने से घबराती है। उनकी दीदी उनका बिस्तरा लगा मच्छड़दानी टांग आती जिससे वे सुख से सो सकें। सुबह देखा जाता गद्दी, मसहरी कहीं कुछ नहीं, खाली खाट पर विनोद सोये हुए हैं। उनकी आँखों में नींद बहुत ही कम थी। रात का अधिकांश समय ही ध्यान जप में कट जाता था। परवर्ती काल में आचार्य देव कहा करते थे—"चार पाँच घण्टे जपध्यान तो मैं बचपन से ही करता था।"

जिस उम्र में बच्चे पाँच मिनट स्थिर होकर बैठे नहीं रह सकते उस उम्र में पाँच घण्टे ध्यानस्थ वही महापुरुष रह सकते है जिनमें अलौकिक शक्ति हो।

शक्तिशाली विनोद

हमलोगों की प्राय: यह धारणा रहती है कि घी-दूध या अच्छा भोजन खाने से ही शरीर हृष्ट-पुष्ट बनता है। विनोद स्वयं इस धारणा को खंडित करने वाले मूर्तिमान

उदाहरण थे। साधारण भात और उबले आलू खाकर भी विनोद असाधारण बल के स्वामी थे। वे रोज व्यायाम करते थे। एक हजार उठक-बैठक लगाना उनके लिये मामूली बात थी। इसके सिवा वे नियमित मुग्दल भांजते थे। परवर्ती काल में मदारीपुर के आश्रम में रखे हुए गाव-पेड़ की लकड़ी से निर्मित एक गदा की जोड़ी को देख लोग विस्मित हो उठते थे।

ब्रह्मचारी विनोद की दैहिक शक्ति का परिचय अनेक अवसरों पर गाँववालों को भी देखने को मिला था। एक दिन उनके शरीर का बल प्रत्यक्ष देखकर उनके एक सहचर सतीशबाबू आश्चर्यचकित रह गये थे। सतीशबाबू के घर के पास एक गहरी नहर थी। एक दिन सात-आठ व्यक्ति एक बड़े नौका को अलकतरा लगाने के लिये प्राणपण से निकालने की चेष्टा कर रहे थे। पर वे उसे निकाल नहीं पा रहे थे। विनोद ने उनसे पूछा "तुमलोग भात खाते हो या घास? उन सबको हटाकर अकेले ही उन्होंनें नौका पकड़ कर उलट दिया। वहाँ उपस्थित सभी लोग यह देखकर अवाक रह गये थे।"

विनोद के बारे में विष्णु भंइया की धारणा थी कि यह तो पुष्टिकर भोजन खाता ही नहीं केवल नमक-भात खाता है; इसमें तो ताकत जरा भी नहीं होगी। शरीर दिखने में विशाल है, इसमें चर्बी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। एक दिन एक बड़े पेड़ को आरे से चीड़ना था। उसके लिये पेड़ को एक चौकी पर चढ़ाना था। उसके लिये आदमी चाहिये थे। विष्णु भुंइया स्वयं कार्य का निरीक्षण कर रहे थे। विनोद वहाँ से गुजर रहे थे। सबने उन्हें भी हाथ लगाने को कहा। विनोद ने जरा सा मुस्कुरा कर, उस पेड़ को, जिसे १५-१६ लोग भी उठा नहीं पा रहे थे, अकेले ही उठाकर मचान पर रख दिया। उनके पिता विष्णु भंइया दूर से ही यह देख विस्मित हो कर रह गये। मांस-मछली-अण्डे के बिना शरीर दुर्बल हो जाता है, उनकी यह भूल धारणा दूर हो गई।

एकदिन कई लोग मिलकर एक पेड़ काट रहे थे। पेड़ काटने के बाद कुछ आवाज करता एक और ढुल गया पर गिरा नहीं। जितना कटना बाकी था, वहाँ से किसी तरह पेड़ टस से मस नहीं हो रहा था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब पेड़ को हटा न पाये, तो वहाँ से गुजरते विनोद को उन्होंने सहायता के लिये पुकारा। विनोद पहले तो राजी नहीं हुए परन्तु सबके अनुरोध करने पर वे राजी हो गये। उन्होंने जैसे ही पेड़ को पकड़ा सब जान बुझ कर दूर हट कर खड़े हो गये। उनके मन में यही विचार था कि देखें तो इनके शरीर में कितनी शक्ति हैं? गेरूआ धारण करने के पहले से ही लोगों ने विनोद को साधु कहना शुरू कर दिया था। उन्होंने पेड़ को पकड़ कर जोर से खींचा और पेड़ धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

ब्रह्मचारी के असीम शारीरिक शक्ति के विषय में स्कूल के बच्चे पहले से ही जानते थे। स्कूल के वार्षिक खेल प्रतियोगिताओं में, विशेषकर रस्सी खींचने की प्रतियोगिता में, जिस दल में विनोद खड़े रहते उसकी जय निश्चित थी। अत: सभी चाहते थे विनोद उनके दल में आ जाए। उनके दैहिक बल की चर्चा चारों और फैल गई थी। एक दिन कुछ मुसलमान सरदार भंइया के घर आये। उन्होंने कहा—"आपके बेटे के बल की चर्चा सुनकर हम उनके दर्शन के लिये आये हैं।" पिता ने बेटे का कमरा दिखा दिया। बन्द दरवाजे से वे ताक झाँक कर रहे थे कि ब्रह्मचारी ने बाहर आकर उनसे पूछा-क्या चाहते हैं? उन्होंने कहा "हम यह सुनकर आये हैं कि ब्रह्मचारी मस्त पहलवान है, अत: हम उनके बल की परीक्षा लेने आये हैं।" ब्रह्मचारी ने उन्हें कई प्रकार से समझाया, पर जो आये थे उनके मन में अपनी पहलवानी का गर्व था, वे सहज ही मानने बाले न थे। उनके रहते, सोलह वर्ष का किशोर बल में नाम अर्जित करे, असंभव। ब्रह्मचारी ने जब देखा कि ये टलने वाले नहीं, न ही समझने वाले हैं, उनके बल की परीक्षा लिए विना वे जायेंगे नहीं तब उन्होंने उनको एक-एक कर उठा कर फेंकना शुरु किया। इसके बाद वें मस्तान सरदार ब्रह्मचारी को सलाम ठोक कर अपने-अपने घरों की ओर वापस चले गये।

बाजितपुर में उस समय एक प्रतापशाली मुसलमान सरदार था। अपने देह की शक्ति के बल पर सबको तंग करता फिरता था। संभ्रान्त लोगों को तंग करना, सारे शहर उन्हें अपमाणित करना उसका रोज का काम था। एक दिन वह गाँव के बाजार के बीचोंबीच खड़े होकर, ब्राह्मण-कायस्थों को गालियां दे रहा था, उन्हें मार डालने की धमकियां दे रहा था। सारे गांव में यह बात फैल गई पर कोई उसके भय से प्रतिवाद करने की हिम्मत नहीं कर रहा था। ब्रह्मचारी के कानों तक यह बात पहुँची। उन्होंने सोचा इस गुण्डे का दमन करना ही होगा, पानी सर से गुजर चुका है। बाजार से घर लौटते समय वे नहर के किनारे खड़े हो गये। वह मस्तान घर लौटते समय जब नहर के पास पहुंचा तो विनोद ने कहा, 'क्यों भाई सरदार, सुना है तुम ब्राह्मण-कायस्थों को गाली दे रहे थे? मार डालने का भय दिखा रहे थे? सरदार ने उद्धत भाव से कहा,—दिखा रहा था, गाली दे रहा था तो, और भी दूंगा, और भी मारूंगा। क्या कर लोगे तुम? यह सुनते ही विनोद ने, और एक भी बात न कह कर सरदार को दोनों पैरों से पकड़ कर उठाया शून्य में पाँच बार घुमाया और पटकनी दे धरती पर फेंक दिया। उस गुण्डे के होश ठिकाने आ गये। ब्रह्मचारी के दोनों पैरों पर झुकते हुए उसने कहा, "भंइया तुम मेरे बाप हो, अब कभी इस प्रकार का दु:साहस न करूंगा"। यह कहते हुए उसने क्षमा मांगी और अपने घर की ओर चला गया।

अपने बचपन में देखी, मैं एक घटना का जिक्र कर रहा हूँ। मैं अपनी छात्रावस्था

मैं प्रायः मदारीपुर के आश्रम में जाता था। वहाँ स्वामीजी महाराज के श्रीमुख से उनके जीवन की कई कहानियाँ सुना करता था। उनके मुख से ही उनके छात्र जीवन में कठोर ब्रह्मचर्य पालन, उनके तेज वीर्य, उनके बल की कई कहानियाँ मैंने सुनी थी।

मदारीपुर आश्रम में दो गदाएं बड़े यत्न के साथ रखी हुई थीं। उन दो गदाओं को उठाकर स्वामीजी महाराज व्यायाम किया करते थे। उनकी एक गदा को दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर उठाने में ही कष्ट होता था। उस प्रकार की भारी भरकम गदा को (दोनों हाथों में दो) पकड़ कर व्यायाम करना क्या सहज था? उस पर वे कुछ भी पुष्टिकर भोजन न लेते थे। केवल दालभात और उबले आलू खाकर इतनी शक्ति का संचय वे कहाँ से कर पाये थे?

मदारीपुर के आश्रम के जिस कमरे में आचार्यदेव का आसन था उसी के ठीक सामने दो तल्ला फूस का कमरा था। १९३४-१९३५ की बात है। वैशाखी पूर्णिमा के वात्सरिक उत्सव की तैयारियां हो रही थी। उत्सव के एक दो दिन पहले आश्रम गया था। नाना काम हो रहे थे। स्वयं स्वामीजी महाराज सारे कार्यों का निरीक्षण-परीक्षण कर रहे थे। देखा दो तल्ले मकान के बाँस बदलने का कार्य जोरों से चल रहा था। पहले की दो खुंटियों को हटाकर साथ ही साथ नई खुंटिया लागानी थी। इसके लिये चाल को ऊपर करके पकड़ना था। पर खुंटी बदलने के लिये चाल को जितना ऊपर उठाना चाहिये कोई उठा नहीं पा रहा था। और आदमी की सहायता चाहिये थी। अब तक स्वामीजी महाराज मुक्त दर्शक की भांति खड़े थे। अब वे सामने आये। उन्होंने एक ओर से पकड़ा। बाकी लोगों ने दूसरी ओर से, और दो जनों ने जल्दी जल्दी खुंटी बदल दी। मैं तो विस्मय से अवाक हो देखता रह गया। बार-बार यही देख रहा था कि उबले आलू भात खाकर भी कितनी शक्ति अर्जित की जा सकती है।

दीक्षा, सिद्धि और सन्यास

१९१३ ईस्वी में विनोद कक्षा दस के विद्यार्थी थे। श्री वीरेन्द्रलाल भट्टाचार्य बाजितपुर हाईस्कुल के प्रधानाध्यापक पद पर आये। कुछ दिनों में ही उन्होंने लक्ष्य किया कि एक दिव्य कान्ति बालक कक्षा में चुपचाप बैठा हुआ भी कक्षा में नहीं रहता। उसका मन न जाने कहाँ रहता है। प्रधानाध्यापक की हैसियत से उन्होंने खोज करनी शुरू की कि वह बालक कौन हैं? अध्यापकों ने कहा—वह तो विनोद है, ऐसा बालक मिलना दुर्लभ है। धीरे-धीरे उस अदभुत छात्र के साथ वीरेन्द्र बाबू का परिचय बढ़ा। शिक्षक-छात्र में घनिष्ठता बढ़ी। इस समय की बाते स्वयं वीरेन्द्र बाबू

लिख गये हैं। उन्हीं के लेख के कुछ अंश दे रहा हूँ। इससे उनके छात्र जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

"स्कूल के प्रथम श्रेणी के छात्र रूप में ही स्वामी प्रणवानन्द से मेरा परिचय हुआ था। उनका नाम था विनोद बिहारी दास। पिता का नाम विष्णुचरण भंइया था। भुँइया पदवीसे उनकी सामाजिक और आर्थिक अवस्था की सूचना मिलती है। उस मुहल्ले में कुछ घर कायस्थों के थे। उनमें अन्यतम थे विष्णुचरण दास। घर मकान, जमीन, गहना आादि प्रचूर था उनके पास। गांव के इस सम्पन्न मध्यवित्त परिवार मे विनोद का जन्म हुआ था। उन्होंने अभाव जाना ही न था। विष्णु भुँइया स्वयं दृढ़काय थे, उनके पुत्र उनसे भी अधिक दृढ़काय थे। सारे गांव में इस प्रकार के व्यक्तित्व का स्वामी और कोई दूसरा न था। विनोद के भाईयों में से कुछ उनसे बड़े और कुछ उनसे छोटे थे। अतः परिवार के दाय-दायित्व से मुक्त थे, अपने मन के अनुसार चलने के लिये स्वतन्त्र थे।"

"किन्तु लगता था यह बालक पूर्वजन्म का योगी था। इसी कारण भोग विलास की ओर उसका जरा भी आकर्षण न था। नखाग्र या भ्रूकुटी के मध्य उसकी दृष्टि निबद्ध रहती थी। न जाने क्या खो दिया—न जाने क्या पाना है—न जाने क्या करना है—इस प्रकार के अनमने भाव से हमेशा आविष्ट रहते थे।"

"सन १९१३ की फरवरी में मैं बाजितपुर के स्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर आया। विनोद कक्षा की पिछली बेंच पर माथा नीचे किये काफी स्थान घेरे बैठा रहता था। लगता था चलते-चलते थक कर मानो थोड़ी देर के लिये बैठने आया है। उसके हाथ में पेन्सिल, कांपी, कभी-कभी दो एक पुस्तकें रहती थी। अपने ध्यान में मग्न वह बैठा रहता था। पुकारने पर आवाज भी देता पर तन्द्रा में डूबा रहता था।"

"दोनों में काफी अन्तर था—मैं प्रधानध्यापक और वह मेरा छात्र। घनिष्ठता होना ही अदभुत बात थी। किन्तु उसका व्यक्तित्व इतना असामान्य था कि उस अदभुतदर्शी बालक के संबंध में कौतूहल होना अस्वाभाविक न था। लोग उसकी प्रशंसा करते न अघाते थे। उसके संबंध में अध्यापक कहते कि ऐसा लड़का और दूसरा नहीं हो सकता। वह जितना धीर स्थिर था उतना हीं नम्र मधुर भी, वैसा ही बलिष्ठ और कर्मशील था। पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता, न जाने कैसे उदास भाव में डूबा रहता।"

"धीर-धीरे उससे बातचीत होने लगी। पांव में जूता नहीं, शरीर पर वस्त्र नहीं, कोपिन के ऊप्र मोटी धोती, मोटे चादर से ढ़ंका विशाल देह, चमकते हुए दाँत, उन्नत विशाल वक्ष, श्यामवर्ण, प्रशस्त ललाट, धुंधराले घने केश, उज्ज्वल दृष्टि, मृदु मधुर हँसी, उन्नत नाक—मानो बर्फ से ढंका पत्थर का शिव हों। देखते ही आखें जुड़

जाय ऐसा नयनाभिराम रूप। रोज हजार मुगदल भांजते हैं, यह कहानी भी कान में पड़ी। साथ ही साथ उनके कठोर तपस्वी, ब्रह्मचारी इत्यादि आख्यान भी जाना। कठोर बिस्तर पर उनके शयन, त्रिसंध्या स्नान, आंखे बंद किये ध्यान में लीन रूप—अश्विनीबाबू के भक्तियोग, कृष्णानन्द एवं विवेकानन्द के ग्रंथो का अध्ययन, यहां तक कि योग के पुस्तकों का भी अध्ययन,—यह सब पता चला। इसके बाद आयी शिवरात्रि। धार्मिक अनुष्ठान में मैं भी कम न जाता था। थोड़ी घनिष्ठता होते ही विनोद का संकोच कट गया। वह भी आने जाने लगा। धीरे-धीरे उसके साथ बिताये न जाने कितने प्रसंग जुड़ गए।"

"शिवरात्रि का उपवास रखना था। निश्चित हुआ कि रात्रि जागरण किया जायेगा। विनोद ने फूल-बेलपत्र का संग्रह किया। अपने-अपने भावानुसार पूजा समाप्त कर भजन कीर्तन आरंभ हुआ। सारी रात बीत गयी—किसी को आभास तक न हुआ। हम कमी स्तोत्र पाठ कर रहे थे, कभी भजन गा रहे थे। और इस सारे कार्यक्रम के साक्षीस्वरूप विनोद एकासन में बैठे रहे। बालक का धैर्य, स्थिरता और ध्यानपरायणता देख मैं विस्मित हो उठा। ('कण्ठे कण्ठे करूणाकथा', चतुर्थ खण्ड से उद्धृत)।

प्रधानाध्यापक ने इस समय विनोद में एक छटपटाहट सी देखी। इस संसार में रहकर कुछ नहीं होगा। किसी का उपकार नहीं किया जा सकेगा। शायद इसी कारण वह पलायन करना चाहता था। अपने चारों ओर छात्र और युवाओं में संयम और ब्रह्मचर्य के अभाव से वे अस्थिर और हताश हो उठे थे। इसका प्रतिकार किसी न किसी उपाय से करना होगा। इसी से उनका मन इतना चंचल, इतना व्यग्र दिखलाई पड़ता था। उनका मन दिन पर दिन वैराग्य की ओर खिंचा जा रहा था। एकदिन बातों ही बातों में मुझे उसने कहा था, "मास्टरजी मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। मैं सन्यास लेकर इस संसार का त्याग करूंगा। सन्यासी बने बिना देश की रक्षा नहीं की जा सकती। युवकों की दुरवस्था अपनी आँखों से देखी नहीं जा रही।" प्राय: इसी प्रकार की बातें सुनकर मास्टरजी चिन्तित हो उठे। वे प्राय: विनोद को समझाते, कहते, अभी रूक जाओ, परीक्षा तो समाप्त करो। परन्तु जिस तक बाहर की पुकार पहुँच चुकी हो वह क्या घर के अन्दर बंध कर रह सकता है? वीरेन्द्रबाबू ने जब यह अनुभव कर लिया कि इसे अब रोके रखना असंभव है तो एक दिन उन्होंने कहा, "यदि सच ही तुम्हें योगी बनना है तो उसके लिये एक सद्गुरू की आवश्यकता होगी। अगर तुमने जाने का निश्चय कर ही लिया है तो एक गुरू के पास जाओ जिसे मैंने पाया है, जिनके चरणों में मैने अपने को समर्पित कर दिया है। वह तुम्हें प्राताड़ित नहीं करेंगे, तुम्हें सही मार्ग दिखला देंगे।" वीरेन्द्रबाबू गोरखपुर के योगीराज गंभीरनाथ से दीक्षित थे। उन्होंने विनोद को उन्हीं की शाखा में जाने के लिये कहा।

विनोद ने मास्टरजी की बातों में कोई आग्रह नही दिखलाया। उन्होंने प्रश्न किया था, "मनुष्य क्या गुरू हो सकता है मास्टरजी ? विनोद ने यह प्रश्न क्यों पूछा था यह कहना कठिन है। भारत की चिरकालीन चली आती गुरु परम्परा से वे भलीभांति परिचित थे। वे सनातन प्रथा के विरोधी न थे। लगता है समाज में व्याप्त पाखण्डी, व्यवसायिक दृष्टि वाले गुरूओं से उन्हें वितृष्णा थी। साधारण मनुष्य 'गुरू' पद के अधिकारी नहीं हो सकते; शायद यही समझाना उनका उद्देश्य था। जो वास्तव में सद्गुरू होंगे, वे ईश्वरीय शक्ति के अधिकारी होंगे। लगता है विनोद बाबा गंभीरनाथ के विषय में पहले विशेष कुछ जानते न थे। वीरेन्द्रबाबू से उनकी दिव्य कथा सुनकर वे बाबा गंभीरनाथ के प्रति आकृष्ट हुए। लगता है, भगवत शक्ति की प्रेरणा से ही वे दीक्षा लेने को तैयार हुए थे। एकदिन उन्होंने मास्टरजी से कहा था—मास्टरजी, मैं जाऊंगा, मैं दीक्षा लूंगा।"

१९१३ ई० की दुर्गा पूजा की छुट्टियों में वीरेन्द्रबाबू विनोद को लेकर गोरखपुर की यात्रा पर निकले। मास्टरजी ने विनोद का परिचय बाबा गंभीरनाथ जी के साथ करवाया। बाबाजी ने विजयादशमी के दूसरे दिन शुक्ला एकादशी को विनोद को दीक्षा देने का दिन नियत किया। बाबाजी ने और भी कई लोगों को उस दिन आने के लिये कहा था। निर्दिष्ट समय पर सब दीक्षा-स्थान पर उपस्थित हुए। केवल विनोद ही नहीं पहुंचे। सारे आश्रम में खोजा गया पर उनका कहीं पता ही नहीं। सब चिन्तित हो उठे। इस समय वे कहाँ जा सकते हैं ? नाथजी ने आश्रम से बहुत दूर एक वृक्ष की ओर संकेत करके कहा—"विनोद उसी पेड़ के नीचे बैठा हुआ है। जाओ उसे मेरे पास ले आओ।"

पेड़ के नीचे बैठे विनोद सोच रहे थे—यदि वास्तव में ईश्वर ने बाबा गंभीरनाथ जी को मेरा गुरू बनाकर भेजा है तो वे निश्चय ही मुझें खोज लेंगे और दीक्षा देंगे। वही हुआ। नाथ जी ने विनोद को बुला कर दूसरे ढंग से दीक्षा प्रदान की। विनोद बने—ब्रह्मचारी विनोद। ब्रह्मचारी विनोद ने सन्यास की दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की थी परन्तु बाबाजी ने किसी विशेष कारण से उन्हें सन्यास की दीक्षा न दी थी। ब्रह्मचारी विनोद की दीक्षा आध्यात्मिक साधना के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना है। ब्रह्मचारी महाराज ने जिस विराट कर्मयज्ञ का आयोजन किया था उसकी सूचना इस दीक्षा से ही मिलती है। स्वामी वेदानन्द जी ने ठीक ही कहा था, **"ब्रह्मचारी के हृदय में स्थित विराट आध्यात्मिक भण्डार में महात्मा गंभीरनाथजी की योगशक्ति के अग्निस्फुलिंग के जाते ही वह वृहत्तर दावानल के तेज के समान प्रज्वलित हो उठा, और उसने समाज और जाति में युग-युगों से संचित पाप-ताप, कुसंस्कारों की राशि को जला कर भस्मीभूत कर डाला।"**

दीक्षा लेकर ब्रह्मचारी अपने गांव बाजितपुर लौट आये। ब्रह्मचारी महाराज की दीदी हेमांगिनी बसु से सुना था कि ब्रह्मचारी उस समय दीदी से नाथजी के विषय में कहता था, "इस समय भारतवर्ष में इतने बड़े योगी और दूसरे नहीं हैं।" गोरखपुर से लौट कर ब्रह्मचारी की साधना कठोर से कठोरतर होती चली गयी। उनकी सारी-सारी रात योग साधना में कट जाती थी। दीदी रात में बिस्तर लगा मच्छड़दानी टांग आती—दूसरे दिन सुबह वे सब साधन कुटीर के बाहर पड़े हुए मिलते थे। कुछ दिन देखने के बाद दीदी ने बिस्तरा लगाना बन्द कर दिया। आराम, विलास—ये सब तो ब्रह्मचारी के लिये बने ही न थे। प्रारंभ से ही वे मिताहारी और साधारण भोजन करने वाले थे। वे भोजन केवल शरीर-रक्षा के लिये करते थे; वह भी उबला हुआ आलू और चावल। पोषाक में एक सफेद धोती और एक सफेद उत्तरीय पहनते थे।

दीक्षा लेने के कई महीनों बाद वे फिर गोरखपुर मठ में लौट आये। मउ का वातावरण साधन-भजन के लिये उपयुक्त था। मठ के पास के एक निर्जन आमबागान में आसन लगा कर दिन पर दिन आहार निद्रा भूल कर वे जप-ध्यान में लीन रहा करते थे। कभी-कभी नाथजी स्वयं ढंढ़ कर उन्हें खिलाते थे। एक दिन एक आश्रमवासी ने नाथजी से शिकायत की कि विनोद आश्रम का कुछ काम नहीं करते, केवल साधन भजन में व्यस्त रहते हैं। नाथजी ने गंभीर हो कर कहा, "विनोद को तुम लोग कुछ भी नहीं बोलोगे। वह जिस तरह मेरा कार्य कर रहा है वह तुमलोगों में से कोई भी नहीं कर सकता।"

कुछ दिनों बाद ब्रह्मचारी महाराज ने गुरू से विदा ली और काशी चले आये। काशी के असीघाट पर एक निर्जन मकान में वे कुछ दिनों तक रहे। इस समय वे रात-दिन अर्धबाह्य दशा में रहते थे। आहार-निद्रा की उन्हें कोई चिन्ता न थी। आहार कहाँ से जुटता इसकी चिन्ता भी उन्हें न थी। परवर्तीकाल में उन्होंने कहा था, "इस समय नाथ जी सूक्ष्म देह धारण कर मुझे दर्शन देते थे।" आचार्यदेव ने शिष्यों से कहा था, "नाथजी के समान योगेश्वर महापुरुष अब कहाँ हैं? उनके इंगित पर सूर्य चन्द्र भी अपनी कक्षा से च्युत हो सकता है। उन्हें कोई पहचान न पाया। वे साधारण मनुष्य की तरह रहते थे।"

काशी में वास करते समय ब्रह्मचारी को खूब ज्वर चढ़ा। शरीर का ताप इतना बढ़ गया था कि जहां सोते वहाँ की भूमि काली पड़ जाती थी। आध्यात्मिक शक्ति के कारण ही वे इतने प्रचण्ड ताप में अचैतन्य होकर रहते थे। प्रधानाध्यापक वीरेन्द्र बाबू ने लिखा है, "काशी में कुछ दिनों की कठोर साधना के बाद ही उन्हें बुखार

चढ़ा था। तीन दिनों तक उन्हें बाह्यज्ञान न था। सारे समय भीतर ही भीतर उनकी योग-साधना, आसन, मुद्रा, प्राणायाम, शुरू हुई। उसके बाद बाबा उन्हें तीर्थाटन पर ले चले। सारे तीर्थ घूम आने के बाद उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ। उनका चित्त फिर आया। ज्वर के विकार के आवरण में गुरुदेवने उनकी सब वासनाओं को अल्प समय में ही जला डाला था। यह सब बातें मैने स्वयं अपने गुरू के मुख से सुनी थी। वे अत्यन्त अल्पभाषी थे, मुझें अकेले में पाकर दो-चार बातें बतलाते थे।" (कण्ठे कण्ठे करुणा कथा)।

काशी में जब ब्रह्मचारी ज्वर से अचेतन, आधे हीश-आधे बेहोश अवस्था में रहते थे तब एक वृद्धा आकर उनकी सेवा अपनी सन्तान की तरह करती थी। आचार्यदेव ने कहा था—अगर उस समय वह वृद्धा मेरी सेवा न करती तो आज मेरे शरीर की रक्षा न होती। उस वृद्धा का परिचय न जाना जा सका। समाधि के उपरान्त जब मन धीरे धीरे सहिष्णु होता चला गया तो गुरू के निर्देश पर ब्रह्मचारी बाजितपुर लौट आये।

दीक्षा पाने के बाद ब्रह्मचारी आध्यात्मिक साधना में मग्न रहते थे। इस समय आध्यात्मिक शक्ति संपन्न व्यक्तियों तथा साधकों के साथ उनका सम्पर्क होता था। यह सम्पर्क दैहिक न था। कई बार आध्यात्मिक रूप से उनका सम्पर्क स्थापित होता था। यह सम्पर्क सामान्य मनुष्य की समझ के बाहर का है। ब्रह्मचारी महाराज प्राय: ही जगदबन्धु का उल्लेख करते थे। जगदबन्धु कठोर ब्रह्मचारी व तपस्वी थे। एकदिन बाजितपुर स्कूल के एक छात्र, जो ब्रह्मचारी के भक्त थे। (बाद में उनके लीला सहचर स्वामी सच्चिदानन्दजी) से उन्होंने कहा, "आज सन्ध्या को भजन कीर्तन होगा, प्रभु जगदबन्धु आयेंगे, तुम भी आना। सन्ध्या समय थोड़ी देर से वह बालक जब ब्रह्मचारी जी के साधनकुटीर पर पहुँचा तो देखता हैं, दरवाजा बन्द है और अन्दर कुछ लोग भजन कीर्तन कर रहे हैं। कुछ देर बाद दरवाजा खुला तो बालक—भक्त ने पुछा, प्रभु जगदबन्धु आये थे? ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, हाँ आये थे। अवश्य ही 'स्थूल देह' में इन दो महापुरुषों का आपस में मिलन कभी भी नहीं हुआ। भारत के योगी अपनी इच्छानुसार सूक्ष्म देह में जहाँ कहीं भी, जिस किसी से भी मिल सकते हैं।

पहले कह चुका हूँ कि गोरखपुर से लौट कर ब्रह्मचारी की तपस्या कठोर से कठोरतर होती चली गयी थी। उन्होंने आहार-निद्रा-विश्राम का प्रायः त्याग कर दिया था। इसी समय उन्होंने संकल्प ले कर एक बार सात दिन और एक बार चौदह दिनों तक दिन-रात कठोर साधना की थी।

भुँइया के घर की छत पर एक कोठरी थी। उसमें कोई विशेष आता जाता न था। घर में रहते हुए भी यह कोटरी जनशून्य थी। अपनी साधना के लिये ब्रह्मचारी ने इसे चुना था। बाह्य जगत से अपने को पूर्णतः अलग कर वे सात दिनों तक इसी कोठरी में साधना में लीन रहे।

सात दिनों तक लोगों के साथ बातचीत, भोजनपानी, मिलना-जुलना सब बन्द हो गया था। घर के लोग उद्विग्न हो उठे थे, सब प्रतीक्षा कर रहे थे, ब्रह्मचारी कब दरवाजा खोलेंगे? सात दिनों के बाद ब्रह्मचारी ने सबकी चिन्ता दूर करते हुए दरवाजा खोला। उनका शरीर तप रहा था। माँ और अन्य लोग धबरा गये। विस्तर पर उहें लिटा दिया गया। डाक्टर को सूचना भेजी गयी। डाक्टर ने ज्वर मापा तो १०७° था। डाक्टर डर गये, स्तम्भित हो गये। उन्होंने कहा, इस प्रकार का ज्वर तो हाथी को होता है, मनुष्य को होने से तो वह बच नहीं सकता। शरीर के उस प्रचण्ड उत्ताप के साथ ही तकिये का सहारा लेकर ब्रह्मचारी जी सब के साथ स्वाभाविक रूप से बोलचाल रहे थे। उनके मुख पर क्या दैवी शान्ति थी!

डाक्टर ने कहा, इसी समय दवा देनी होगी नहीं तो न जाने क्या हो जायेगा? किसी आदमी को अस्पताल भेज कर दवाई मंगानी पड़ेगी। दीदी ने कहा मैं ले आती हूँ। ब्रह्मचारी ने देखा, आफत आ गयी उन्होंने दीदी को जाने से मना किया। डाक्टर किस प्रकार समझ सकते थे कि यह रोग उनकी दवा से मिटनेवाला नहीं था? यह ताप साधारण रोगजनित नहीं था, यह तो योग से उत्पन्न था। इसका उपचार भी साधारण से अलग है। अतः दवा नहीं लायी गयी। दूसरे दिन ज्वर कहाँ गया पता भी न चला।

अबकी बार तो और भी कठोर साधना थी। चौदह दिन की। ब्रह्मचारी ने कोठरी का दरवाजा बन्द कर दिया। दरवाजा बन्द करने से पहले माँ से कहा कि शाम के समय केवल बेलपत्रों का रस ही लूंगा। दरवाजे के सामने बेलपत्र के रस के अतिरिक्त और कुछ न रखा जाये। माँ के प्राण सन्तान को भूखा रखकर क्या तृप्त हो सकते थे। वात्सल्य से पूर्ण माँ वेलपत्ते के रस के साथ एक कच्चा नारियल पानी और थोड़े फल-मूल भी रख देती थी। संकल्प से च्युत होने से पहले प्राण निकल जाये, जिनके ऐसे विचार थे; जननी द्वारा रखे हुए फलमूल उहें भला क्या अपने संकल्प से डिगा सकते थे? शाम को आकर माँ देखती उन्होंने केवल रस ही लिया है, बाकी की वस्तएँ जस की तस रखी रहती थीं।

चौदह दिनों के बाद ब्रह्मचारी उस कोठे से बाहर निकले। उस दिन भोर के समय सबसे पहले उनके चचेरे भाई ने उन्हें बागीचे में देखा। उनके भाई कालिदास ने लिखा है, "क्या ज्योतिर्मय दिव्यकान्ति थी! नील मेघवर्ण ने, मानों अपनी गोद में

विद्युतप्रभा को उठा रखा हो। उसी प्रकार वे पल में झलक दिखा कर निकल गये। चौदह दिन के अनाहार, अनिद्रा, अनियम से उनकी देहकान्ति जरा भी मलीन नहीं हुई। कठोर तप का तेज मानों उनके अंग प्रत्यंग से निकल रहां था। इस तरह की तिव्र गति से वे चले गये, जिससे लगा कि इतने दिनों की कठोर साधना के बाद भी उनमें दुर्बलता का नामो निशान ना था।"

१९१३ ई० में दीक्षा ग्रहण के समय से लेकर १९१६ में सिद्धिलाभ के समय तक ब्रह्मचारी रात का अधिकांश समय अपनी साधना-कुटीर अथवा घर से बहुत दूर शमशान में जपध्यान, योग-साधना में बिताया करते थे। जनशून्य शमशान में अकेले ब्रह्मचारी अपने आसन में ध्यान-मग्न रहते थे। अंधेरी रात में शमशान के पास से गुजरने वालों को, ब्रह्मचारी को देख भूत-प्रेत का भय लगता। इस बात को जानने के बाद वे अपनी साधना के समय अपने छोटे भाई को त्रिशूल हाथ में लेकर पहरा देने के लिये कहते थे।

ब्रह्मचारी के साधनाक्षेत्र के सामने, नाले के उस पार, बेंत के झुटमुटों से ढंका हुआ एक दुर्गम स्थान था। वह स्थान थोड़ा नीचे था। अत: वर्ष में छ: महीने पानी में डुबा रहता था। वह नाले से गाँव से कटा हुआ था, इसी कारण वहाँ कोई आता जाता न था। उसी झुटमुट के बीच था वनदुर्गा (बुढ़िया ठकुरानी) का पूजा स्थान। वर्ष में एक दिन बड़े समारोह के साथ ढोल-ताशे बजाकर गांववासी उस देवी की पूजा करते थे। स्थान निर्जन जानकर ही ब्रह्मचारी कभी-कभी शीत और वर्षा में वहाँ ध्यानमग्न रहते थे। धीरे-धीरे इस स्थान के निर्जन परिवेश ने उनके मन को आकृष्ट किया। इस स्थान को बाद में उन्होंने आपने पीठस्थान के रूप में चिन्हित किया।

१९१६ सन् की माघी पूर्णिमा के दिन ब्रह्मचारी को तपस्या से सिद्धि प्राप्त हुई। सिद्धि उपलब्धि के पश्चात जब उनकी समाधि भंग हुई तो उनके कंठ से ध्वनित हुई-चार महावाणी—"यह युग महाजागरण का युग है, यह युग महामिलन का युग है, यह युग महासमन्वय का युग है, यह युग महामुक्ति का युग है।"

यहाँ यह भी बतलादें कि सिद्धि-प्राप्ति के समय भी सन्यासी महाराज ने सन्यास ग्रहण नहीं किया था। १९२४ सन में जनवरी माह में अर्धकुम्भ के समय, प्रयाग के स्वामी गोविन्दानन्द गिरि से उन्होने सन्यास ग्रहण किया था और विनोद से उनका नाम पड़ा—"आचार्य स्वामी प्रणवानन्द।"

बिप्लवी दल के साथ सम्पर्क

बंगाल में सन् १९०५ से ही क्रान्तिकारी आन्दोंलन जोरो से उठ खड़ा हुआ था।

प्रथम महायुद्ध के समय जर्मनी की अस्त्र सहायता से क्रान्तिकारी दल सारे देश में ससस्त्र क्रान्ति लाने के उद्देश्य से सचेष्ट हो रहे थे। इस विराट कार्य के लिये अर्थ की आवश्यकता थी। अर्थ संग्रह के लिये क्रान्तिकारियों को डकैती, ट्रेन लूटना, आदि कार्य करने पड़े। ब्रह्मचारी विनोद प्रत्यक्षतः कभी भी इन विप्लवियों के साथ युक्त न हुए। किन्तु इस आन्दोलन के प्रति वे उदासीन नहीं थे। वे देश की स्वाधीनता आन्दोलन का समर्थन करते थे। क्रान्तिकारियों के कार्य-कलापों के साथ सीधा सम्पर्क न रहते हुए भी वे क्रान्तिकारियों के साथ परोक्ष सहानुभूति रखते थे। बांगलादेश के विप्लवी आन्दोलन के अन्यतम नेता श्री पूर्णदास का घर बाजितपुर गाँव से तीन चार मील की दूरी पर था। पूर्णदास ब्रह्मचारी की अद्‌भुत संगठन शक्ति से परिचित थे। वे ब्रह्मचारी के साथ सम्पर्क बनाये रखते थे।

बाजितपुर के ही पास के गांव दत्त केन्दुआ के क्रान्तिकारी नेता सन्तोष दत्त के साथ ब्रह्मचारी का घनिष्ठ सम्पर्क था। क्रान्तिकारी दल ब्रह्मचारी को नितान्त अपना मानते थे। गुरू महाराज सक्रिय रूप से क्रान्तिकारियों के क्रिया कलापों के साथ युक्त न रहकर भी प्रयोजन पड़ने पर उनके अस्त्र-शस्त्र अपने पास रखते थे। पुलिस के गुप्तचर विभाग की सतर्क दृष्टि उन पर थी। गांव में पुलिस चौकी पास में होने के कारण ब्रह्मचारी के पास कौन आ जा रहा है, सारी खबर ही पुलिस को होती थी। एक बार रात के समय पुलिस ने उनके घर को चारो और से घेर लिया। विप्लवियों के दो पिस्तौल, कुछ तलवारें और एक बम ब्रह्मचारी के पास रखे हुए थे। इनको घर से बाहर निकालने का भी कोई उपाय न था। बहुत सोच विचार कर उन्होंने सोचा, दालान की कार्निस पर रखने से पुलिस की नजर उस पर नहीं पड़ेगी। छोटे भाई भोला और साथी निशिकान्त दत्त की सहायता से कार्निस पर पिस्तौल और तलवार चढ़ायी गयी। समस्या आयी बम की। उसे कहाँ रखा जाये? भोर के समय तलाशी शुरू हुई। भोला की चादर के नीचे बम रखा हुआथा। बम साथ ले लेकर वह सारे घर में घूम रहा था। छोटा बच्चा होने के नाते किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। भोला ने मछली की डलिया हाथ में ली, इधर-उधर करते हुए घर से बाहर निकल गया। पुलिस को जब तक उस छोटे बच्चे का खयाल आता बम तालाब के जल के नीचे छिपाया जा चुका था। घर की तलाशी में कुछ भी हाथ न लगा। तब भी पुलिस ब्रह्मचारी को मदारीपुर पकड़ कर ले गयी। तीन दिनों के बाद उनके बड़े भाई उन्हें छुड़वा कर लाये।

१९१४ में मदारीपुर के चारों ओर कई डकैतिया हुई। पुलिस की धारणा थी कि पूर्णदास का दल तथा बाजितपुर के विद्यालय के छात्रों का दल इन डकैतियों के पीछे था।

'डकैती' को लेकर जब पुलिस कुछ कर न पायी तो उसने 'फरीदपुर षड़यंत्र' का मामला सजाया और इस सिलसिले में धड़-पकड़ शुरू कर दी। ब्रह्मचारी की संगठन शक्ति और उनके द्वारा प्रशिक्षित युवक तथा उनके भक्तों को पुलिस स्न्देह से देखती थी। उन्हें खबर मिली थी कि क्रान्तिकारी पूर्णदास के साथ ब्रह्मचारी के घनिष्ठ संबध हैं। अत: उन्होंने ब्रह्मचारी को बाहर रखना निरापद न समझा तथा उन्हें गिरफ़्तार कर पहले मदारीपुर, फिर फरीदपुर की जेल में रखा। कारावास में वे ध्यान-जप में ही अपना समय बिताते थे। ब्रह्मचारी के पिता के बन्धु वकील मथुरानाथ दास ने मदारीपुर महकमें के शासक Donavan साहब से जाकर कहा—"षड़यन्त्र के मामले में विनोद ब्रह्मचारी को गिरफ़्तार करना आपकी भूल है। यह मैं दृढ़ता से कह सकता हूँ। क्योंकि जिस युवक के जीवन का लक्ष्य दीन-हीनों की सेवा करना हो, वह डकैती जैसे निम्न कोटि का काम कर ही नहीं सकता। यह उसके आदर्श के विरूद्ध है। उसे मैं शैशवकाल से ही जानता हूँ।" इसके बाद ब्रह्मचारी के विषय में अच्छी तरह जाँच पड़ताल की गयी। तीन महीने के बाद फरीदपुर की जेल से उन्हें मुक्त कर दिया गया।

मत और पथ भिन्न होने पर भी ब्रह्मचारी महाराज की पूर्ण सहातुभूति, प्रेम तथा सहयोग क्रान्तिकारियों के साथ था। आपद-विपद के समय वे सदा उनके सहायक रहे। मदारीपुर के प्रधान विप्लवियों के मुंह से मैंने कई बार महाराज जी के उन पर प्रेम के विषय में सुना है। ब्रह्मचारी के सखा श्री निशिकान्त दत्त के संस्मरणों से मालूम पड़ता है कि पुलिस की नजरें बचा कर आधी रात को क्रान्तिकारियों का ब्रह्मचारी के पास आना-जाना लगा रहता था। श्री दत्त ने एक रात का जो संस्मरण लिखा है वही संक्षेप में बतला रहा हूँ,—सन १९२२ में ब्रह्मचारी महाराज आाचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के अनुरोध पर ग्रामीणों के बीच चरखा और ताँत-शिल्प के प्रचार में व्यस्त थे। एक समय, दिन के काम से थके दत्त महाशय रात में सोये हुए थे। समय लगभग एक या डेढ़ का रहा होगा। सारा गांव ही निद्रामग्न था। चारो ओर सुनसान मौन व्याप्त था। उसी कुटीर में दूसरे बिस्तर पर ब्रह्मचारी सोये हुए थे। अचानक दरवाजे को किसीने बहुत हल्के से सरकाया और दवे गले से पुछा—आप हैं? दोनो ही उठ कर बैठ गये। इतनी रात गये न जाने कौन पुकार रहा है? उठ कर ध्यान से सुनने लगे, फिर बही आवाज—आप हैं? ब्रह्मचारी सारा माजरा समझ गये, दत्त महाशय से कहा—'जल्दी द्वार खोलें'। दरवाजे पर तीन चार लोग खड़े थे। बत्ती जलाने जा रहे थे कि व्रह्मचारी ने मना कर दिया। अनजान अतिथियों में से एक ने ब्रह्मचारी के कान में न जाने क्या क्रहा? सुनते ही ब्रह्मचारी उनके साथ उठ कर बाहर चले गये। थोड़ी देर बाद ही दत्त महाशय को पुकार कर कहा, "अभी इसी वक्त सात

लोगों के लिये खाना बनाना होगा, इन्होंने सुबह से कुछ नहीं खाया।" रात के दो वजे रसोई बनायी गयी। दाल-चावल तैयार होते-होते एक घंटा लग गया। खाना तैयार होने पर केला पत्ता काटकर, परोसने के लिये उन्हें बुलाने गया तो देखता हूँ, नहर किनारे एक पेड़ के नीचे वे उन अतिथियों से बातें कर रहे हैं। 'खाना तैयार है' सुनते ही वे उन्हें लेकर अन्दर आये। कमरे के बाहर पत्तों पर परोस कर उन्हे खिलाया। स्वयं ही लोटे में पानी भर कर दिया, और कहा—आहिस्ते-आहिस्ते खाओ। उनके लिये ब्रह्मचारी के मन में कितना प्रेम था, कितनी करूणा थी! उनके खा लेने पर ब्रह्मचारी ने पूछा, "केवल दाल भात खाकर पेट भरा तो ?" उन्होंने उत्तर दिया, "इस प्रकार तृप्त होकर किसी भोजमें भी नहीं खा पाते"। खाना समाप्त होने पर ब्रह्मचारी उन्हें फिर पेड़ के नीचे ले गये। बातचीत खत्म कर भोर होने से पहले ही वे रात के अंधकार में विलीन हो गये। इसके बाद भी दत्त महाशय ने उन लोगों को कई बार ब्रह्मचारी के पास आते-जाते देखा था। बाद में परिचय भी हुआ। महाराज ने परिचय कराते हुए कहा, "यह क्रान्तिकारियों का दल है। भारतमाता को स्वाधीन कराने का व्रत लेकर ये क्रान्ति की राह पर बढ़ चले हैं।" ('कण्ठे कण्ठे करूणाकथा' पर आधारित)।

ब्रह्मचारी के भविष्यत कर्मजीवन में सहयोग देने के लिए जो उनके साथ आ जुड़े उनमें से कई क्रांन्तिकारी आन्दोलन के साथ जुड़े हुए थे। इस समय जितने बालक, और युवक उनके साथ आ जुड़े थे, उनमें से कई लोग क्रान्तिकारी थे। वे उन्हें सखा, बड़े भाई, हितैषी के समान मानते थे। ब्रह्मचारी भी उन्हें अपना मान कर हार्दिक स्नेह करते, उनकी मंगल कामना करते। बाद के जीवन में यद्यपि उन्होंने उनका साथ नहीं दिया था पर संघ के गठन के आरंभिक दिनों में उनके योगदान का उल्लेख वे बार बार करते थे। उनके प्रसंग में वे आनन्द से भर उठते थे।" (श्री श्री युगाचार्य जीवन चरित—स्वामी वेदानन्द)।

आचार्यदेव क्रांन्तिकारियों के देशप्रेम एवं त्याग की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। किन्तु त्याग के पद से स्खलित होने पर क्या परिणाम होता है, इसका उदाहरण भी संघ संतानो के सामने रखते थे—

"त्याग मनुष्य में अमित तेज-वीर्य भर देता है। भोग मनुष्य की शक्ति, साहस, विक्रम, पराक्रम का हरण कर लेता है। एक समय क्रांन्तिकारियों ने त्याग और संयम का पथ अपनाया था। अत: वे पथ से भटके न थे। उनकी पवित्रता, उनके संयम, उनकी बिलासहीनता, कष्टसहिष्णुता, देश के लिये उत्सर्ग को कौन भुला सकता है? सरकार ने उन्हें दबाने के लिये कितनी यातनाएं दी थी? यातना से उनका आन्दोलन

दबा नहीं था बरन और जोश आ गया था उनमें। तब सरकार ने दूसरा तरीका अपनाया था; उनके लिये भोग-बिलास की सामग्री जुटा दिया था। युवकों ने भी सोचा सरकार का पैसा है, जितना खर्च करबा सकें करबा लें? बस यहीं वे चूक गये। उनका सर्वनाश होना शुरू हुआ। देश के वे सुपुत्र आज विवाह करके घर संसार की चिन्ता में, पेट की चिन्ता में, देश को भुला बैठेथे।" मैं स्वयं क्रांन्तिकारियों के साथ युक्त रहा हूँ। उससे अच्छा मुल्यांकन मैंने और कहीं नहीं देखा।

अपने कर्मजीवन के शुरू से ही उन्होंने बिप्लवियों को अपना माना था। जब उनके अप्रकट होने के दिन पास आ गये थे उन दिनों भी बिप्लवी युवक आचार्यदेव को अपना ही मानते थे। आचार्यदेव भी उन्हें अपना घनिष्ठ मानते थे। १९४० में आचार्यदेव अन्तिम बार मदारीपुर आये थे। तब कई क्रान्तिकारी उनसे मिलने आये थे। उन्होंने उन्हें रक्षा दल के गठन का उद्देश्य और अर्थ खोल कर समझाया था। फरीदपुर गाँव के तथाकथित हरिजनों में जो शक्ति सुसुप्त अवस्था में है उसे समझा कर उन्हें संगठित करने का परामर्श दिया था। उनके निर्देशानुसार दो क्रान्तिकारी घनघोर वर्षा में बाजितपुर उनसे मिलने गये थे। आचार्यदेव ने उन्हें घर के बेटे के समान अपने हाथ से पाटिसपटा और पीठे बना कर खिलाया था। क्रांन्तिकारियों के साथ हमेशा ऐसा ही प्रेम करते थे। शुद्रों के बीच काम करने के लिये उन्होंने उन युवकों की आर्थिक सहायता भी की थी।

धर्म के आधार पर जातिगठन का महान व्रत लेकर जिनका आगमन हुआ था, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की ओर से क्या वे आँखे बन्द कर उदासीन रह सकते थे? देश के लिये आत्मोत्सर्ग की भावना से जो आगे आये थे वे हमेशा ही आचार्य देव के स्नेह के भागी रहे। आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता भी करते थे, उपदेश भी देते थे।

सेवाव्रत की सूचना

ब्रह्मचारी रात-दिन जपध्यान में लगे रहते थे। इसके साथ ही पीड़ितों की पीड़ा का हरण तथा युवकों का चरित्रगठन—ये दो विषय भी उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। सेवा एवं चरित्रगठन इन दोनों को उनके कर्म जीवन का प्रारम्भ कहा जा सकता है। मूक प्राणियों के साथ उनके व्यवहार में करूणा और दर्द का परिचय हम पहले ही पा चुके हैं। बड़े होने पर उनकी यह करूणा हम पीड़ित, दुखी और विपत्ति में फँसे हुए मनुष्यों की सेवा में पाते हैं।

"विनोद थे जन्मजात नेता। तरुण ब्रह्मचारी विनोद का व्यक्तित्व—श्वेत परिधान,

श्वेत उत्तरीय से आवृत्त, नग्नपैर, बलिष्ठ, सुगठित देह, समुन्नत, दिव्यमूर्ति, जिसका अंग-अंग संयम की कान्ति से युक्त था। प्रशान्त गंभीर मुखमण्डल पर तप की उज्ज्वल ज्योति, सदा न जाने किस गंभीर चिन्ता में निमग्न रहते थे। लगता था मानो एक आज्ञात दिव्य लोक में विचरण कर रहे हों।" (श्रीश्री युगाचार्य संग और उपदेशामृत)।

जो भी उनके संपर्क में आया, उनकी ओर मुग्ध दृष्टि से देखता रह गया। उनके विराट व्यक्तित्व से आकृष्ट हो गये। धीरे-धीरे उनको केन्द्र में रखकर एक दल का गठन हो गया। यह युवकों का दल लोक हित के लिये द्वार-द्वार जाकर भिक्षा की याचना करता तथा आपद-विपद एवं अन्य दुःख-दर्द में लोगों की सहायता करता।

एक दिन की घटना है। रात का समय था। ब्रह्मचारी श्मशान में आसन पर ध्यान लगा कर बैठने जा रहे थे। इसी समय उन्होंने देखा, पास ही में एक मुसलमान के घर में आग लगी हुई है। उसी समय ब्रह्मचारी अपने लड़कों का दल लेकर आग बुझाने के लिये दौड़ पड़े। वे अकेले ही दो बड़े-बड़े बरतनों में पानी भरकर लाने लगे। उनके दल के लड़के उसी पानी को फेंक-फेंक कर आग बुझाने लगे।

एकदिन बहुत ठण्डी रात में एक मुसलमान ब्रह्मचारी को बुला कर खुले मैदान में ले गया। वहाँ एक रोगी बृद्ध, नग्न बदन पड़ा हुआ था। शरीर में प्राणों का कोई चिन्ह न था। ब्रह्मचारी ने नाक के पास हाथ रखकर देखा प्राण अभी हैं। थोड़ी चेष्टा करने पर उसे बचाया जा सकता है। उन्होंने उस व्यक्ति से कहा जिस किसी तरह हो इसे आश्रम ले चलो। इसी बीच ब्रह्मचारी का युवकदल भी आ पहुँचा। उस आदमी को आश्रम ले जाया गया। सूखे पत्ते, डालियां एकट्ठी कर, उसको जला कर, उस आदमी को सेंक दिया गया। प्रायः दो घण्टों की चेष्टा के बाद उस आदमी को होश आया। ब्रह्मचारी के आदेश से भंइंया के घर से दूध लाकर उसे पिलाया गया। दूध पीकर रोगी जब आहिस्ते-आहिस्ते उठ बैठा तब प्रायः भोर हो चुका था। दूसरे दिन उसे अच्छी तरह खिला-पिला कर उसके हाथ में दो रूपये रख कर उसे घर वापिस भेज दिया गया। लोगों में बात फैल गयी कि ब्रह्मचारी ने मरे मनुष्य को जीवित कर दिया।

बाजितपुर ग्राम का नहर कुमार नदी के साथ जुड़े होने के कारण वर्षा में नहर में बहुत मछलियाँ होती थी। प्रत्येक वर्षा में बाहर के कुछ मछुआरे मछली पकड़ने यहाँ आया करते थे। एक बार बारिसाल से आये एक मछुआरे को हैजा हो गया। उसके साथ एक छोटा लड़का था। उसके सिवाय उसका कोई संगी साथी न था। रोगी मरणासन्न अवस्था में था। ऐसी अवस्था की खबर ब्रह्मचारी तक पहुँची। अन्होंने

अपने दल के साथ मिलकर उसकी यथा योग्य चिकित्सा और सेवा की। पर बहुत कोशिश करने पर भी उसे बचाया न जा सका। शाम को वह मर गया। पंचायत के पंच कहने लगे, इसकी जाति का पता ठिकाना नहीं है, इसका दाह संस्कार नहीं होगा। उनका यह फैसला सुनकर ब्रह्मचारी गुस्से से लाल हो उठे, "कौन कहता है मृत्तक का दाह संस्कार न होगा? मैं भी देखता हूँ कि दाह संस्कार होता है या नहीं? वह हिन्दू तो था ही, फिर चाहे किसी भी जाति का क्यों न हो? ब्रह्मचारी ने निशिकान्त दत्त तथा अन्य युवकों को साथ लिया, पेड़ से मोटी-मोटी डाल काटकर चिता सजायी तथा मृतक का अन्तिम संस्कार किया। मृतक के नाबालिग लड़के को अपने आदमियों से उसके घर तक पहुँचाया। बाजितपुर ग्राम में उस दिन जिस निष्काम कर्म का सूत्रपात हुआ था वह व्रत आज उनके द्वारा स्थापित भारत सेवाश्रम संघ द्वारा सारे भारत में प्रसारित हो रहा है।

ब्रह्मचारी अपने अनुगत युवकों को सेवा के साथ-साथ लोकहित के व्रत का पालन, संयम और ब्रह्मचर्य पालन के लिये भी प्रोत्साहित करते थे।

छात्रों में संयम का अभाव, नैतिकता का अभाव देख ब्रह्मचारी उद्विग्न हो उठते और उसे समूल नष्ट करने के उपाय सोचते विचारते थे। ब्रह्मचारी के कठोर ब्रह्मचर्य, तपश्चर्या से प्रभावित हो आस-पास के गाँव के नौजवान उनके पास आने लगे। कई अभिभावकों को अपनी सन्तान का उनके पास आना-जाना पसन्द भी न था। उन्हें भय था कि उनके लड़के कहीं साधु न बन जायें। इस लिये कई लड़के रात को अभिभावकों से छिपकर उनसे मिलने आते। ब्रह्मचारी अपने अनुगत छात्रों को लोकहित के साथ-साथ संयमन और ब्रह्मचर्य पालन के लिये भी प्रोत्साहित करते। इन्हीं युवको में से कईयों ने क्रान्तिकारी संग्राम में भाग लिया था और कुछ सन्यासी हो गये थे। ब्रह्मचारी बार-बार एक ही बात उन युवकों को समझाते कि त्याग, सत्य, संयमन और ब्रह्मचर्य ही प्रत्येक के जीवन का आदर्श होना चाहिये। छात्र जीवन से ही उनके भावी लीला सहचर एक-एक कर एकत्रित होने लगे थे। १९१०-११ ई० में बाजितपुर के स्कूल का एक विद्यार्थी उनका खूब अन्तरंग हो गया था। उस बालक को अन्य बालकों से बचा कर अपने आदर्श के अनुरूप ब्रह्मचारी ने अपने हाथों से गढ़ा। वही बालक भारत सेवाश्रम संघ के सभापति श्रीमत् सच्चिदानन्दजी महाराज थे। श्रीमत् आत्मानन्द जी महाराज भी छात्रावस्था से ही ब्रह्मचारी महाराज के संसर्ग में आये थे। श्रीमत् स्वामी योगानन्दजी और सुरेश ब्रह्मचारी युवक सम्मेलन में शनि, रवि और छुट्टी के दिन आते थे। इनके सिवाय और भी युवक आते थे—स्वामी शुद्धानन्दजी (क्षितिश) स्वामी हरिहरानन्दजी (बाणीकान्त) स्वामी निर्गुणानन्दजी (जतीन्द्र) आदि।

आश्रम स्थापना

१९१६ ई० माघी पूर्णिमा के दिन एक पेड़ के नीचे समाधिस्थ अवस्था में ब्रह्मचारी विनोद के भीतर विश्वनाथ का पूर्ण प्रकाश समा गया। कठोर तपस्या के बाद उन्हें सिद्धि लाभ हुई। सिद्धि प्राप्ति के एक वर्ष बाद ही आश्रम की प्रतिष्ठा की गयी। यद्यपि उस समय तक आश्रम का नामकरण 'भारत सेवाश्रम संघ' नहीं हुआ था फिर भी १९१७ ई० माघी पूर्णिमा के दिन बाजितपुर ग्राम के आश्रम में जो उत्सव हुआ था उसे ही भारत सेवाश्रम संघ की प्रतिष्ठा का पहला उत्सव माना जा सकता है। इसके बाद प्रत्येक वर्ष ही बाजितपुर के आश्रम में आचार्यदेव के सिद्धिलाभ और आविर्भाव के स्मरण में उत्सव संपन्न होता आया है।

बाजितपुर आश्रम का आरंभ अत्यन्त साधारण तरीके से हुआ था। बाजितपुर शमशान के उलटी तरफ नहर के उस पार जंगल के बीच 'बुढ़िया ठाकुरानी' का चौरा (वनदुर्गा का चौरा) था। यह स्थान ब्रह्मचारी का प्रिय स्थान था। शीत और ग्रीष्म ऋतु में इस निर्जन परिवेश में वे प्रायः चौरे पर ध्यान मग्न हो जाते थे। मन ही मन उन्होंने इस स्थान को अपने भावी कर्मस्थल के रूप में चुन लिया था। एकदिन ब्रह्मचारी ने अपने अनुगत तरूणों और युवकों से आश्रम स्थापना का संकल्प कह सुनाया। प्रस्ताव सुनते ही सबको प्रसन्नता हुई। बहुत उत्साह के साथ आश्रम का काम शुरू हुआ। जंगल का कुछ हिस्सा साफ किया गया। मिट्टी डाल पर उस स्थान को थोड़ा ऊँचा बनाया गया। उस ऊँची जगह पर ही कुछ दिनों बाद एक फूस की झोपड़ी खड़ी की गयी। भंइंया के मकान की साधन-कुटीर से इस नई कुटिया में ब्रह्मचरी का कर्मकेन्द्र स्थानान्तरित हुआ। इस प्रकार भविष्य के 'भारत सेवाश्रम संघ' और श्री श्री प्रणव मठ की नींव इस कुटिया से पड़ी।

माघी पूर्णिमा का शुभदिन समीप आ गया। लड़के बड़े उत्साह से धन और चावल का संग्रह करने लगे। गांव के प्रायः सबने ही उनकी यथायोग्य सहायता की। १९१७ ई० की फरवरी के महीने में माघी पूर्णिमा की तिथि पर आचार्यदेव का सिद्धत्व-लाभ और आश्रम का स्थापना दिवस खूब धूमधाम से आयोजित हुआ।

संघसंतान और दीक्षित शिष्यों के लिये माघी पूर्णिमा का दिन महापवित्र और उद्देश्यपूर्ण दिन है। इस दिन के विषय में संघनेता ने स्वयं लिखाथा—"आगामी माघी पूर्णिमा के दिन, तपःतेज, तपःशक्ति, तपःप्रभाब के पूर्ण विकाश के समय, तुम सब संघनेता के सामने उपस्थित होकर उनके पूर्ण तपस्तेज के विकास के समय उनकी शुभदृष्टि, शुभाशीर्वाद, एवं तपोप्रभाव को ग्रहण करी, मन-प्राण में इसी प्रकार की आकांक्षा, व्याकुलता, आकुलता लेकर उनके सामने प्रस्तुत होवो।" (संघ गीता)

आश्रम-प्रतिष्ठा के बाद से लड़के संध्या के समय आते थे। शनिवार एवं रविवार के दिन आस-पास के गांव से युवकों के दल पर दल आते। ब्रह्मचारी उन्हें संयम, ब्रह्मचर्य प्रभृति विषयों पर उपदेश देते। रोज संध्या को उपासना होती। लड़के ढ़ोल , करताल आदि बजाकर कीर्तन करते। शंकराचार्य रचित वैराग्यपरक संस्कृत संगीत, "दिनमपि रजनी सायं प्रातः, शिशिर बसन्ते पुनरायातः" गाया जाता। उसके अतिरिक्त आन्यान्य भक्ति विषयक गीत, भजन भी होते। ब्रह्मचारी स्वयं भी बीच-बीच में लड़कों के साथ मिल कर गाते। उनका गुरूगंभीर कण्ठस्वर सबके स्वरों से ऊपर सुनाई पड़ता था। सन्ध्या का आकाश हरि-संकीर्तन से मुखरित हो उठता। हरिनाम संकीर्तन ब्रह्मचारी को अत्यन्त प्रिय था। बीच-बीच में गांव के कविराज फेदू महाशय अपने दल के साथ आकर कीर्तन करते। कीर्तन सुनने लोग एकत्र हो जाते। आाश्रम के कारण गांव में एक नवीन परिवेश का निर्माण हो उठा। एक ओर नाना प्रकार की नैतिक चरित्र गठन सबंधित आलोचना, भजन, कीर्त्तन, दुसरी ओर भिक्षा ग्रहण। सप्ताह में लड़के नौ-दस मन चावल का संग्रह करते थे। भिक्षा में मिले चावल की बिक्री कर उन पैसों से असहायों, आनाथों की सेवा एवं अन्य लोकमंगलकारी कार्य किये जाते थे। ब्रह्मचारी के तपस्या, ब्रह्मचर्य, जनसेवा की कहानी धीरे-धीरे पूर्वबंगाल के ग्राम-ग्राम, शहर-शहर में फैलने लगी। ब्रह्मचारी की निस्वार्थ सेवा भावना से प्रेरित हो कर दल के दल युवक उनके पास आने लगे। इन सब युवकों में से कितनों ने ब्रह्मचारी महाराज का आश्रय ग्रहण किया। उन्हें ही इकट्टा कर प्रथम संतान दल का गठन हुआ। ये ही थे संघ के शुरुआती के सन्यासी।

जिस जमीन पर बाजितपुर आश्रम की प्रतिष्ठा हुई, वह तथा बुढ़िया ठाकुरानी का चौरा महेन्द्रनाथ चक्रवर्ती की देवोत्तर सम्पत्ति थी। महेन्द्र चक्रवर्ती भंइया परिवार के कुलपुरोहित थे। उनके मन में ब्रह्मचारी महाराज के प्रति अपार श्रद्धा थी। एक दिन महाराज ने दत्तमहाशय को भेज कर महेन्द्रनाथ चक्रबर्ती को जमीन के विषय में बातचीत करने के लिये बुलवा भेजा। ब्रह्मचारी के अनुरोध पर चक्रवर्ती महाशय ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वह जमीन आश्रम को दान में दे दी।

जमीन एवं अन्यान्य कई विषयों पर वार्तालाप करने के पश्चात जव चक्रवर्ती महाशय घर जाने के लिये उठ खड़े हुए, उसी समय उन्होंने कहा, "साधु तुम्हारे बारे में लोगों के मुंह से अनेक प्रकार की बातें सुनी है। तुम कौन सी शक्ति लेकर इस कार्य के लिये उतरे हो ?" कुछ स्निग्ध हंसी के साथ ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "बुद्ध, शंकर, चैतन्य—इन तीनों की सम्मिलित शक्ति लेकर मैं इस कर्मक्षेत्र में उतरा हूँ।"

सेवाकार्य का प्रसार और नवीन आश्रम की स्थापना

बांगला १३२६ साल (अंग्रेजी १९१९) के आश्विन मास में प्रचण्ड चक्रवात ने पूर्वबंगाल में अपनी ताण्डव लीला दिखलायी, जिसमें सैकड़ों नर-नारियों के जानमाल की हानि हुई थी। लाखों लोग बेघर हो गये, सैकड़ों पशु मारे गये। चक्रवात के प्रचण्ड वेग ने घर-द्वार, पशु-आदमी सबको चूरमार कर दिया था। पीड़ित असहाय जनसाधारण का क्रन्दन ब्रह्मचारी महाराज को व्याकुल किये दे रहा था। मनुष्य की दुर्गति पर उनका मन हाहाकार कर उठा था। इस समय मदारीपुर के विशिष्ट व्यक्तियों ने मिलकर राहत समिति का गठन किया। उसके बाद कलकत्ता में झञ्झापीड़ित व्यक्तियों के लिये East Bengal Cyclone Committee का गठन हुआ था। ब्रह्मचारी महाराज इन सबकी सहायता से सेवाकार्य चलाते जा रहे थे। सारा सेवाकार्य इतने सुन्दर ढ़ंग से हुआ कि उनकी ख्याति पूरे पूर्व बंगाल में फैल गयी। इस समय कई आदर्शवादी युवक ब्रह्मचारी के सम्पर्क में आये।

मदारीपुर के लोग ब्रह्मचारी के चारित्रिक-माधूर्य एवं सेवा-निपुणता पर मुग्ध थे। वहीं पर विशिष्ट व्यक्तियों के आग्रह से जननेता सुरेन्द्रनाथ विश्वास के प्रयास से १९२६ साल के अन्त में मदारीपुर सेवाश्रम संघ की स्थापना हुई। स्थानीय उत्साही युवकों की सहायता से दरिद्र नारायण सेवा, रोगी-सेवा, स्वजनहीन मृतकों का संस्कार आदि कार्य चलने लगे। इसके लिये भिक्षा एवं चंदा संग्रह की व्यवस्था की गई।

बाजितपुर सेवाश्रम के नानाविध सेवाकार्य की परिचालना के लिए दो युवक अर्थ संग्रह करने के लिये, (तब के कुमुद-मधु और अब के श्रीमद स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज और श्रीमदस्वामी योगानन्द जी महाराज) १९२० ई० की जुलाई में खुलना गये। वहाँ स्थानीय जन-नेता नगेन्द्रनाथ सेन के घर पर ठहरे। वहां स्थानीय वकील ज्योतिष घोष के घर के गृह-शिक्षक दीर्घस्थायी रोग से शय्याशायी थे। इन दोनों युवकों ने स्वेच्छा से उनकी सेवा सुश्रुषा का भार ग्रहण किया। रोगी को बचाया न जा सका, परन्तु दोनों त्यागी सेवकों की अक्लान्त सेवा-निष्ठा, उनके मुख से वैराग्यमूलक भजन सुन घोष महाशय इतने अभिभूत हो उठे कि सब विशिष्ट व्यक्तियों के साथ उनका परिचय कराया। इन युवकों के आचार-व्यवहार, बातचीत से वे इतनें मुग्ध हुए कि खुलना में सेवाश्रम संघ की स्थापना की गयी और स्थानीय विद्यालय-महाविद्यालय के उत्साही छात्र-वृन्द के सहयोग से खुलना में नाना जन-कल्याण कार्य होने लगे।

अल्प समय में ही मदारीपुर, बाजितपुर, और खुलना में सेवाश्रम की प्रतिष्ठा हो

गयी थी। ब्रह्मचारी महाराज स्वयं तीनों स्थानों का दौरा कर काम देखा करते थे और छात्रों को प्रोत्साहित किया करते थे। धीर-धीरे उनके कर्मक्षेत्र का विस्तार कलकत्ता तक हुआ। देश के समाचार पत्रों में उनके सेवा मूलक कार्य, आदर्श, उद्देश्य के बिषय में छपता रहता था। देशबन्धु चित्तरंजन दास के साथ-साथ अन्य विशिष्ट नेताओं से उनका परिचय हुआ। उनके साथ परिचय पा कर, उनके कार्य कलाप से परिचित हो कर, सारे नेता ब्रह्मचारी महाराज के व्यक्तित्व से मुग्ध हो गये थे।

बार-बार कई बर्षों की अनावृष्टि के कारण खुलना जिले के सतक्षीरा महकमे में दुर्भिक्ष के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। इस जिले के सुन्दरवन इलाके के लोग दुर्भिक्ष से हाहाकार कर उठे। क्षुधापूर्ति के लिये अन्न नहीं, तन ढकने को वस्त्र नहीं, अखाद्य, कुखाद्य खाकर, अनाहार से लोग मरने लगे। संवाद सारे देश में फैल गया। भारत के अन्य प्रांतों तथा बंगाल से अर्थ एवं त्राण सामग्री लेकर आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय आगे आये साथ ही अपने युवकों का दल लिये ब्रह्मचारी विनोद भी राहत कार्य में जुट गये।

पाँच सौ के लगभग युवक ब्रह्मचारी महाराज के साथ सुन्दरवन के दुर्गम अंचलों में सेवा कार्य में जुट गये थे। सुन्दरवन बाघ, मगरमच्छों का अंचल था। अपने जान की परवाह किये बिना ये माँ के सपूत दिन रात अपने काम में जुटे हुए थे। महाराज की प्रेरणा उनके उत्साह को बढ़ाने के लिये यथेष्ट थी। वे एक वर्ष तक लगातार कार्य में डटे रहे। स्वामी वेदानन्दजी तब नये नये-सेवा कार्य में आगे आये थे। वे लिखते हैं—"वहाँ कर्मीगण नौका के अभाव में तैर कर नदी-नाले पार करते। जल के अभाव में सड़ा हुआ दुर्गन्ध युक्त, जीवाणुओं से भरे हुए दूषित जल का पान करने को बाध्य थे। भीषण आंधी तूफान में उद्दाम लहरों के झोंको को सहन करते हुए चावल के बोरों से भरी नाव चला कर ले जाते। अनाहारी रहकर काम करते। रात को चावल और कच्चा केला उबाल कर काम चलाते। कई बार तो वह भी उपलब्ध न होता तो भूखे ही सो जाते। सबने अनुभव किया कि उनके अन्तर की कोही शक्ति उन्हें काम करने की ओर प्रेरित किये जाती है। तब समझ में नहीं आया था कि ब्रह्मचारी की अमोघ संकल्प शक्ति ही कर्मी और सेवक दल को प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर रही है। ब्रह्मचारी के विश्वग्रासी संवेदना की तरंगों ने कर्मीगण के हृदय को उद्वेलित कर दिया था।"

१९२१ के अन्त में, खुलना में दुर्भिक्ष का सेवाकार्य बन्द हुआ। दुर्भिक्ष ग्रस्त ग्रामवासी सारे बर्ष कुछ काम पा सकें इस प्रकार की योजना पर विचार किया गया। ताँत के कपड़े बुनना, चरखे पर सूत कातना, बेंत के नाना काम आदि की व्यवस्था की गयी। इन सब कामों के लिये, रिलीफ के लिये जमा पैसे से आशाशुनि में आश्रम

की स्थापना की गयी। १९२२ में इस आशाशुनी से और भी तीन शाखा-आश्रम की स्थापना की गयी। रोगों की चिकित्सा के लिये दातव्य चिकित्सालय की स्थापना की गयी जहाँ से बिनामूल्य रोगियों की चिकित्सा की जाती। गांव-गांव में धर्म-सभा की स्थापना की गयी।

दुर्भिक्ष के सेवाकार्य के बाद अधिकांश युवक अपने-अपने घरों को लौट गये। पर ब्रह्मचारी ने उनके हृदय में सेवा भाव के प्रति ऐसी प्रेरणा जगा दी थी कि भोगविलास सासांरिक बन्धनों का परित्याग कर ब्रह्मचारी महाराज को केन्द्र में रखकर उन्होंने एक दल का गठन किया। कुछ दिनों के बाद माघी पूर्णिमा के दिन यह संतानदल त्याग-मंन्त्र की दीक्षा लेकर पूर्ण ब्रह्मचारी हो गया।

१९२३ में उत्तर बंगाल में बाढ़ आयी जिसमें राजशाही, बगुड़ा, नवगाँव, आदि जिले पूरी तरह प्रभावित हुए थे। बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिये आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के सभापतित्व में, सुभाषचन्द्र, इन्द्रनारायण सेनगुप्त के सहयोग से Flood Relief Committee का गठन हुआ। आचार्य राय ने ब्रह्मचारी महाराज से कहा, "महाराज आप कुछ कार्यकर्ता दें। आपके कार्यकर्ता सहिष्णु और त्यागी हैं। आशाशुनी में उनका काम देख मैं बहुत ही संतुष्ट हुआ। मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय से कुछ नवयुवकों को लेकर आया था पर वे काम नहीं कर पाये। सात दिन से अधिक तो ठहर ही नहीं पाये। आते ही लौटने की बात करने लागते हैं। रेल का भाड़ा, और खर्चा बेकार ही लग जाता है। फिर उन्हें चाय चाहिये, अण्डे चाहिये, आपके कार्यकर्ता के साथ ये सब समस्याएं नहीं हैं। जब तक काम खत्म नहीं हो जाता वे पीछे हटनेवाले नहीं हैं।" —ब्रह्मचारी जी आचार्य राय के अनुरोध पर अपने कार्यकर्ता देने पर राजी हो गए।

पच्चीस कार्यकर्ता का एक दल उत्तर बगांल के शान्ताहार नामक स्थल पर बाढ़पीड़ितों की रक्षा के लिये रवाना हुआ। शान्ताह्मर रिलीफ कार्य का मुख्य केन्द्र था। यहीं से कर्मी-युवकों को उत्तरबंग के विभिन्न केन्द्रों में भेजा गया। इन त्यागव्रती, मानवसेवी, कर्मशील युवकों को उत्साहित करने के लिये स्वयं ब्रह्मचारी विभिन्न केन्द्रों का दौरा करते थे। उत्तर बंगाल में बाढ़राहत कार्य सुचारु रुप से संपन्न हुआ। सारे देश में ब्रह्मचारी जी का नाम फैल गया। १९२४ साल में उत्तर बंग में सेवाश्रम की प्रतिष्ठा की गयी।

चार आश्रमों की परिचालना, कई तरह के सेवाकार्य, सहायता कार्य आदि के कारण ब्रह्मचारी महाराज के कार्य की परिधि बढ़ती गयी। उन्हें प्राय: अपने आश्रमों का दौरा करना पड़ता था। काम के लिये, अर्थ संग्रह के लिये उन्हें प्राय: कलकत्ता

जाना पड़ता था। पहले कलकत्ता में रहने का कोई स्थायी ठिकाना न था। १९२२ सन् में बागबाजार डिस्पेंसरी लेन में एक कमरा तीन रूपये किराये पर लिया गया।

कितनी ही सस्ताई क्यों न हो, तीन रूपये में भी क्या कमरा हो सकता था—वह एक अन्धकोठरी थी। ब्रह्मचारी महोदय चार-पाँच युवकों को साथ लेकर रहते। वे युवक कर्मी सारा दिन घूम-घूम कर प्रचार करते एवं अर्थसंग्रह करते। इसी कमरे में रसोई बनती, खाकर ब्रह्मचारी लड़कों को साथ ले गंगाघाट पर सो जाते। बरसात होने पर भींगते-भींगते वे इसी अन्धकोठरी में आश्रय लेते।

संघ के गठन के प्रारंभिक दिनों में सेवकों को जितना दुखकष्ट उठाना पड़ा था उसकी तो आज कल्पना तक नहीं की जा सकती। उस समय दो-चार आने चंदे के लिये सेवक दल को उत्तर कलकत्ता से दक्षिण कलकत्ता पैदल जाना पड़ता था। बड़े लोगो के मकानों के दरबानों का दुर्व्यवहार सहन करना पड़ता था। वे उन्हें मकान में घुसने नहीं देते थे। उनके हाथ से चन्दे का खाता छीनकर फाड़कर फैंक दिया जाता था। सारे दिन के परिश्रम के बाद उबले आलू चावल खाकर ही परम तृप्ति अनुभव करते। ब्रह्मचारी महाराज की अलौकिक प्रेरणा से कोई भी कष्ट उन्हें कष्ट न लगता था।

इस त्याग, वैराग्य, कष्टसहिष्णुता की भावना को देख महाराज ने उस समय के सेवकदल के मुख्य ब्रह्मचारी (बाद में संघ के सह सभापति श्रीमत् स्वामी विज्ञानानन्दजी) को लिखा था— "जीव जगत के महाकल्याण, महामुक्ति के लिये, तथा देश के सामने सन्यास जीवन का सही आदर्श रखने के लिये तुम जैसे कई सन्यासियों को अपनी चिन्ता भुलाकर सामने आना होगा तथा देश के लिए अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक का विसर्जन करना होगा।" (संघगीता)

१९२२ में बागबाजार की वह अन्धकोठरी छोड़ अठारह रूपये माहवार पर दो कमरे शोभाबाजार में लिये गये और वहीं आश्रम को लाया गया। वहाँ एक ब्रह्मचारी और कुछ सेवक रहते थे। स्वयं ब्रह्मचारी महाराज भी कलकत्ता आने पर वहीं ठहरते थे। १९२४ में आश्रम बहुबाजार में स्थानान्तरित हुआ। वहाँ से कार्नवालिस स्ट्रीट, मिर्जापुर घूम कर बालीगंज के एक मकान में कुछ दिनों तक रहने के बाद १९३२ के मई महीने में बालीगंज में अपने मकान में संघ का प्रधान कार्यालय स्थापित हुआ।

१९२२ सन् में ब्रह्मचारी महाराज ने आश्रम के प्रथम ब्रह्मचारी दल को माघी पूर्णिमा के शुभ दिन पर दीक्षा प्रदान की। १९२३ के फरवरी महीने के माघी पूर्णिमा के उत्सव में, बाजितपुर में, सब ब्रह्मचारी तथा सेवकों ने योगदान किया था। उत्सव के अन्त में ब्रह्मचारी महाराज के सभापतित्व में विचार-विमर्श के लिये सभा बैठी। उसमें उनके परिकल्पित संघ का नाम स्थिर किया गया—"**भारत सेवाश्रम संघ।**"

उस सभा में महाराज ने कहा था, "मेरा संघ होगा बुद्ध का दूसरा संघ, मैं समग्र देश एवं जाति के सामने बुद्ध, शंकर एवं चैतन्य के मत, आदर्श, तपोशक्ति लाकर उसे पुनरूज्जीवित करना चाहता हूँ, उसे संजीवनी प्रदान करना चाहता हूँ।"

'भारत सेवाश्रम संघ' नाम पर विचार करते हुए उन्होंने कहा था, "मैं संघ शक्ति की सृष्टि करना चाहता हूँ। सारा भारत ही इस संघ का कर्मक्षेत्र होगा। भारतीय राष्ट्रीयता का पुनर्गठन इस संघ का उद्देश्य है। अत: 'भारत' शब्द रखना आवश्यक है। सनातन वैदिक आदर्श ही इस संघ का आधार होगा। अत: 'आश्रम' शब्द को भी निकाला नहीं जा सकता। जाति, समाज-व्यक्ति की सर्वविध सेवा ही संघ का कार्य है अत: 'सेवा' शब्द भी रहेगा।" (श्रीश्री युगाचार्य जीवनचरित—स्वामी वेदानन्द)।

पहले ही कहा गया है कि १९२४ के अर्धकुंभ मेले में स्वामी गोविन्दानन्द गिरि से ब्रह्मचारी महाराज ने सन्यास की विधिवत् दीक्षा ली थी और उनका नाम प्रणवानन्द रखा गया था। उसी वर्ष माघी पूर्णिमा की शुभतिथि पर पूर्वनिर्दिष्ट दिन में ब्रह्मचारियों को उन्होने सन्यास धर्म में दीक्षित किया। "इस सन्यासी दल गठन के माध्यम से ही, आचार्यदेव के इच्छित, नवयुग के सन्यासी-संघ की नींव पड़ी।"

१९२४ सन् संघ के इतिहास में एक स्मरणीय वर्ष है। इसी वर्ष अर्धकुंभ के मेले से दीक्षित हो कर लौटने के बाद स्वयं आचार्यदेव ने सात सन्यासियों को दीक्षा दे कर अपने नूतन कर्मचक्र, धर्मचक्र के प्रवर्तन की सूचना दी। इस सप्तर्षिमण्डल के शीर्ष-तालिका में हैं—पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज। वे उस सन्यासी संस्था के दूसरे सभापति थे। स्वामीजी कलागाछिया (फरिदपुर) गांव के मैत्र-वंश के थे तथा उनके बचपन का नाम श्री कुमुद था। उसके बाद पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज। स्वामीजी बरिशाल जिले के प्रतापमहल गांव के थे। पिता का दिया हुया नाम था—श्रीनारायण। प्रतिभावान स्वामी वेदानन्दजी महाराज यशोहर जिले के सुफलकाठी ग्राम के सन्तान थे; पहले का नाम था अमूल्य। अनुशीलन समिति के अन्यतम सदस्य, दर्दी समाज सेवक, मधुसूदन दीक्षा ले कर स्वामी योगानन्दजी महाराज के नाम से जाने गये। फरीदपुर जिले के विलासधन ग्राम में स्वामीजी का जन्म हुआ था। कृती धर्मप्रवक्ता पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी अद्वैतानन्दजी महाराज का पूर्व नाम राजेन्द्र था। इनका पैतृक ग्राम भेरचि था तथा ये भी यशोहर जिले के थे। कलागाछिया ग्राम के मैत्रवंश के ही एक और संतान श्रीनिकुंज, सन्यास व्रत ग्रहण कर पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी आत्मानन्दजी के नाम से विख्यात हुए। पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी निर्गुणानन्द जी महाराज ने अपने जीवन के शेष आधे दिन हिमालय में बिताये थे। आप भी फरीदपुर के ही थे, पैतृक नाम श्रीयतीन्द्र था, ग्राम अलीपुर था।

तीर्थ संस्कार

अपने भारत सेवाश्रम संघ के माध्यम से आचार्य स्वामी प्रणवानन्द जी महाराज ने हिन्दूमिलन मन्दिर, रक्षकदल का गठन कर जनहितकारी सेवाकार्यों को किया है। जनकल्याण के किये गये कार्यों में अन्यतम है—तीर्थों का संस्कार करना। तीर्थयात्रा, तीर्थों में शास्त्रोक्त तरीके से स्नान-पूजा-तर्पण आदि धर्मप्राण हिन्दुओं के धर्म का अंग है। धर्मभीरू, सहज, सरल तीर्थ यात्रियों के ऊपर बहुत दिनों पहले तक पण्डों का इतना अत्याचार होता था कि तीर्थ के नाम से ही यात्री आतंकित हो उठते थे। फिर भी तीर्थ का आकर्षण एक हिन्दू के लिये बहुत बड़ा आकर्षण है। हिन्दूधर्म में पिण्डदान के लिये हिन्दुओं को गया जाकर पिण्डदान करने का शास्त्रोक्त विधान है। गया में पण्डों का अत्याचार, शोषण अपनी चरम सीमा पर था। भारत के प्राय: सभी बड़े तीर्थो में पण्डों का जोर जुलुम चलता था। किन्तु गया में तो उनका व्यवहार अमानविक था।

गयाधाम में पिण्डदान के बाद 'सुफल लेने' की प्रथा है। श्राद्ध और विष्णुपादपद्म में पिण्ड देने के बाद पिण्डदानकारी यजमान को, तीर्थगुरू (पण्डा) के सामने दक्षिणा रख कर बोलना पड़ता है—मैने श्राद्ध, पिण्ड दान आदि जो कर्मकाण्ड किया उसका सुफल मिलेगा तो ? पण्डा कहेगा, "तुम्हारा काम सुसम्पन्न हुआ, तुम सुफल पाओगे आदि, आदि। पण्डा संतुष्ट हो दक्षिणा ग्रहण कर जब कहे कि 'सुफल पाओगे' तभी पिण्ड कार्य पूरा होगा अन्यथा नहीं। यजमान के लिये पण्डे के मुंह से कहलवाना 'सुफल पाओगे' बड़ा ही कठिन कार्य था। तीर्थस्थान में उतरने के दिन से लेकर पिण्डदान की कर्मविधि तक पण्डों की फरमाइशें पूरी करते-करते यजमान के पास दक्षिणा देने तक जो बचता था उससे पण्डों को संतुष्ट करना बड़ा ही कठिन था। 'सुफल पाओगे' कहना शास्त्रोक्त विधान तो बिलकुल ही नहीं है। पण्डों ने अपने स्वार्थ के लिये इस प्रथा को बनाया। किन्तु बर्षों से चली आती इस परंपरा का निर्वाह धर्मभीरु हिन्दू करते आये हैं और आज भी कर रहे हैं। पर शताब्दी के प्रारंभ में ये पण्डे संतुष्ट ही नहीं होते थे। यजमान अपना सर्वस्व लुटाने के बाद वापिस लौट कर रूपये भेजने और पत्र द्वारा सुफल पाने की कामना करते और पाया करते। वर्षों तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों से आये तीर्थयात्रियों को इस अत्याचार का सामना करना पड़ता था। आचार्यदेव की कृपा से आज गया तथा उत्तर भारत के अन्य तीर्थ जैसे काशी, प्रयाग, हरिद्वार, वृन्दावन, तथा पुरी आदि पण्डों के अत्याचार से मुक्त हैं।

गया को पण्डों के अत्याचार से मुक्त करने का संकल्प आचार्यदेव ने दीक्षा लेने

के कुछ दिनों बाद ही लिया था। आचार्यदेव तब १७-१८ वर्ष के तरूण ब्रह्मचारी थे और अपने गुरू के पास गोरखपुर जा रहे थे। माँ और भाई की इच्छानुसार स्वर्गवासी पिता के पिण्डदान के लिये गया उतरे। स्टेशन पर उतरते ही पण्डों के गुरगों के बीच यजमान को लेकर खींचतान शुरु हो गया। उनके अभद्र व्यवहार का प्रतिवाद करने पर वे एकजुट हो कर लड़ने के लिये आ गये। ब्रह्मचारी ने भी रौद्ररूप धारण कर उनके हमले को रोका। उनके उस रौद्ररूप को देख पण्डों के चमचे पीछे हट गये। बाद में इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए आचार्यदेव ने कहा था, "उसी दिन मन में संकल्प लिया था—गया तीर्थ का संस्कार करके रहूँगा।"

गया में संघ के आश्रम की स्थापना के पीछे एक बंगाली महिला की हत्या थी। जिस पण्डे के घर वह विधवा ठहरी थी उन्होंने ही धन के लालच में उस महिला की हत्या कर दी थी। इस घटना से गया के बंगाली समाज में काफी आक्रोश पैदा हुआ था। गया के Bengali Settlers' Association ने गया के पण्डों के अत्याचारों की कई कहानियां संवादपत्रों में प्रकाशित करवायी तथा जनसेवा के लिये सामने आने की अपील जनसाधारण से की। इस आवेदन को पढ़ आचार्यदेव ने निश्चय किया कि इन पण्डों के अन्याय और अत्याचार को रोकना ही होगा। इसी संकल्प के साथ १९२४ में गया में एक मकान भाड़े पर लेकर गया सेवाश्रम संघ की स्थापना की गयी।

'गया सेवाश्रम संघ' की स्थापना से गया के पण्डे डर गये। उसी समय बांगलादेश में तारकेश्वर के महन्त को गद्दीच्युत करने का आन्दोलन चल रहा था। गया के पण्डों को डर था कि संघ भी उसी प्रकार का कोई आन्दोलन छेड़ेगा। आचार्य देव का इस प्रकार का कोई उद्देश्य ही नहीं था। निस्वार्थ, कर्मठ, स्वयंसेवक यात्रियों की सेवा करेंगे, उनकी सुख सुविधाओं का ध्यान रखेंगे, आपद-विपद में उनकी सहायता की जा सकेगी; यही गया में सेवाश्रम संघ की स्थापना का उद्देश्य था। उनका उद्देश्य था तीर्थ स्थान का संस्कार करना, पण्डों के जुल्म से यात्रियों को रिहाई दिलवाना। वे सहयोगिता के भाव से पण्डों के पास गये थे। युग-युग से पण्डों के अत्याचार से मुक्त कर तीर्थ स्थान की पवित्रता को बनाये रखना आचार्यदेव का लक्ष्य था।

संघ का उद्देश्य था यात्रियों के मन से पण्डों का भय दूर करना। शुरू से ही पण्डों ने विरोध करना शुरू किया। वे संघ के कार्यकर्ताओं के पग-पग पर बाधा सृष्टि करने लगे। झगड़े और मारपीट की नौबत तक आयी। पर उस समय के अखबारों में पण्डों के अत्याचारों की कड़ी भाषा में प्रतिवाद तथा संघ के कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी तो पण्डों को भी झुकने के लिये बाध्य होना पड़ा। १९२४ सन् में पण्डों के

साथ समझौता हुआ कि पिण्डदान और श्राद्धादि काम के लिये यजमानों के स्वेच्छा दान के सिवाय पण्डों की और कोई मांग न होगी, न वह और कुछ चाहेंगे।

१४ वर्ष तक पण्डे इस समझौते को मान कर चले। गया के पण्डों के प्रति यात्रियों के मन में आतंक भाव था, वह दूर हुआ। एक सुन्दर पवित्र परिवेश का निर्माण हुआ। १९३७ में प्रादेशिकता के विष ने बंगाली बिहारी के बीच एक शत्रुता की दीवार खड़ी कर दी। इस विद्वेष का फायदा उठाते हुए गया के पण्डों ने पूर्व निर्धारित समझौते को रद्द करना चाहा। उहोंने निश्चय किया कि वे संघ का कोई भी निर्देश नहीं मानेंगे। उन्होंने फतवा जारी किया कि जो कोई तीर्थयात्री संघ में ठहरेंगे, कोई पुरोहित या पण्डा उनका काम नहीं करेगा। जो दो चार पुरोहित या पण्डे काम करने को इच्छुक थे उन्हें भी लाठी दिखाकर पीछे हटने को बाध्य कर दिया। इस जटिल परिस्थिति में आचार्यदेव स्वयं एक दल कार्यकर्ताओं को लेकर गया पहुँचे। उनकी इच्छा थी बातचीत के माध्यम से पण्डों को ठीक रास्ते पर ले आया जाये। उन्होंने पुरोहितों और पण्डों को आश्रम में सभा के लिए बुलाया। दो चार लोगों के सिवा उन्हें कोई उत्तर न मिला।

अब आचार्यदेव दृढ़ता के साथ इस परिस्थिति का मुकाबला करने को प्रस्तुत हुए। किसी प्रकार की बाधा, प्रतिकूलता उन्हें संकल्प से डिगा नहीं सकती थी। उन्होंने निश्चय किया कि आश्रम के यात्रियों को पुरोहित के साथ फल्गुघाट पर पिण्डदान कार्य के लिये भेजेंगे। एक पुरोहित आगत खतरे की संभावना के बावजूद इस कार्य के लिये सामने आया।

एक सन्यासी को बुलवा कर आचार्यदेव ने कहा, "ये पुरोहित यात्रियों से श्राद्धकार्य सम्पन्न करवायेंगे; तुम इनके साथ जाओ। जैसे भी हो काम पूरा करके ही लौटना। मृत्यु से क्या डरना ? मनुष्य को एक न एक दिन तो मरना ही है। इस संसार में कोई हमेशा नहीं रहेगा। मृत्यु एक बार होती है, बार-बार नही।" (स्वामी वेदानन्दजी लिखित 'कण्ठे कण्ठे करूणाकथा' प्रथम खण्ड पर आधारित)।

उस वीर सन्यासी के नेतृत्व में यात्रीदल पुरोहित के साथ फल्गुघाट पर पहँचे। पण्डों ने प्रचार किया था कि सेवाश्रम का कोई भी व्यक्ति फल्गुघाट या विष्णुपद मन्दिर पहुंचा तो सलामत सिर लेकर लौट नहीं पायेगा। इस घोषणा की उपेक्षा करके सन्यासी के नेतृत्व में पुरोहित और यात्रियों का दल फलगुघाट पर आ पहुँचेगा इसकी कल्पना तक पण्डों ने न की थी।

सन्यासी के साथ यात्री और पुरोहित को देख पण्डे क्रोधित हो उठे और हो-हल्ला मचाने लगे। पुरोहित को डराते हुए उन्होंने कहा, "भट्टाचार्य तुम्हारे खून से

फल्गु डूब जायेगा।" सन्यासी को भी बहुत भय दिखलाया, गालियां बकने लगे, किन्तु ये सब चुप रहे। अपना काम खत्म कर वे चले गये। पण्डों ने डीगें बहुत हांकी, गर्जन-तर्जन भी बहुत किया पर उनके देह को छू तक न सके। इसके बाद से जिला प्रशासक के निर्देश पर पुलिस के संरक्षण में आश्रम के यात्रियों के कार्य—श्राद्ध, पिण्डदान आदि सहज भाव से चलने लगे। आचार्यदेव ने कलकत्ता लौटकर देशव्यापी आन्दोलन शुरू किया। बंगाल के ग्राम-ग्राम, शहर-शहर सब स्थानों पर पण्डों के जुल्म के विरुद्ध 'प्रतिवाद सभाएं' होने लगी। इन सब सभाओं का विवरण बांगला, हिन्दी और अंग्रेजी समाचारपत्रों में प्रकाशित होने के फलस्वरूप गया में तीर्थयात्रियों की संख्या कम होने लगी। यात्रियों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिये बिहार सरकार पर दबाव पड़ने लगा। एक ओर जनमत का दबाव दूसरी ओर एक महीने से जोरदार प्रचार के कारण यात्रियों की संख्या में कमी होने के फलस्वरूप आर्थिक क्षति से पण्डे घबरा उठे। तब उनके सामने संघ की शर्त मानने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रहा। आचार्यदेव फिर गया आये। उनके आह्वान पर सब पण्डे और पुरोहित बैठक में सम्मिलित हुए। १९२४ में बनाए शर्तों को मानने के लिए वे तैयार हुए।

भारत के प्राय: सब तीर्थों में ही धर्मप्राण तीर्थयात्रियों से पण्डे अलग-अलग तरह से पैसे वसूला करते थे। भारत सेवाश्रम संघ के तीर्थ संस्कार के फलस्वरूप पण्डों की यह जुल्मबाजी बन्द हो गयी। उत्तर भारत के गया, काशी, वृन्दावन, हरिद्वार, कुरूक्षेत्र, प्रयाग, नवद्वीप आदि स्थानों पर संघ के आश्रम खोले गये। इनका उद्देश्य आपद-विपद से यात्रियों की रक्षा करना था। उनकी सेवा-सहायता के लिये सन्यासियों का एक दल रात-दिन, सदैव निस्वार्थ भाव से तत्पर रहते थे। तीर्थस्थानों पर भारत सेवाश्रम संघ ही यात्रियों का बल और भरोसा था। गयाधाम में पितृपक्ष पर मेला, काशी के अन्नकूट, पुरी की रथयात्रा, हरिद्वार और प्रयाग का कुम्भमेला, गंगासागर के मेला—इन सब मेलों में लाखों-लाखों यात्री आते हैं। भारत सेवाश्रम के सन्यासी अपने कार्यकर्ताओं के साथ सर्वत्र वर्तमान रहते हैं। यात्रियों की आहार, निवास की व्यवस्था, रोगियों की सेवा, लापता यात्रियों को खोजना, इनके अतिरिक्त भजन-कीर्तन, धर्म सभा का आयोजन, यज्ञ-अनुष्ठान का आयोजन आदि प्राय: समस्त मेलों और उत्सव स्थानों पर ही किया जाता है।

१९२४ ई० में आचार्य देव ने कहा था, "केवल तीर्थ संस्कार कार्य के द्वारा ही संघ समग्र देश में परिचित होगा।" आज उनकी वाणी शत-प्रतिशत सत्य प्रमाणित हुआ है।

अगर वे कोई दूसरा कार्य न भी करते तो भी, आचार्यदेव का नाम तीर्थसंस्कार के कारण ही अमर होता।

नैतिक आन्दोलन

आचार्य श्रीमत् स्वामी प्रणवानन्दजी जब केवल 'विनोद' थे तब से ही उनकी चिन्ता का प्रमुख विषय छात्र एवं युवकों का जीवनगठन था। इसके बाद जब इन्होंने धर्मचक्र और कर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया तब से तरूण समाज के चरित्र गठन की ओर उनका गहरा ध्यान था। उनके चरित्र की बुनियाद संयम और ब्रह्मचर्य की दृढ़ नींव पर स्थापित हो सके, यही उनके जीवन का अन्यतम उद्देश्य था। छात्र-वर्ग में संयमहीनता को देख वे व्यथित हो उठते थे। उनका कथन था कि यदि युवक वीर्यवान न हौंगे, वे यदि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करेंगे तो देश का भविष्य अंधकारमय है। आचार्यदेव ने अपने छात्रजीवन में छात्रों के संयमहीन और नैतिकताहीन जीवन को लक्ष्य कर अपने प्रधान शिक्षक से कहा था, "मास्टर साहब आप नहीं जानते, किन्तु मैं जानता हूँ—मैं सब जानता हूँ। ब्रह्मचर्यहीन, सरलताहीन, आशाहीन, उद्यमहीन युवकों से देश छिन्न-विच्छिन्न हो जायेगा। इस को रोकना ही पड़ेगा। ब्रह्मचर्यहीन हो कर सारे युवक अधोपतन की ओर जा रहे हैं। शक्तिहीन क्या देश के लिये कभी भी कुछ कर सकता है? स्वदेशी-स्वदेशी चिल्ला कर क्या होगा? जिन्हें कार्यभार सम्हालना है वे ही मनुष्यत्वहीन हुए जा रहे हैं, कोई देखनेवाला नहीं है। इस देश के छात्र क्या थे और क्या हुए जा रहे हैं। छात्रावस्था का नाम ही था ब्रह्मचर्य आश्रम। आज के विद्यार्थी विलासी, भोगपरायण, ब्रह्मचर्यहीन हुए जा रहे हैं, इनसे तो पढ़ाई-लिखाई भी कुछ न हो सकेगी। युवकों को ब्रह्मचर्य रक्षा की शिक्षा देनी होगी। उन्हें कष्टसहिष्णु बनाना होगा। उन्हें स्वावलम्बी बनाना होगा। प्राचीन भारतीय आदर्श की ओर लौटा लाना होगा।" प्रधान शिक्षक महाशय ने आगे लिखा था "ऐसा कहते-कहते उनकी श्वास रुद्ध होने लगती, गला भर आता, आंखे छलछला उठती, दूसरे ही क्षण उनके मुख पर, आंखों में, एक गंभीर संकल्प की छाप, कठोर कर्म-प्रतिज्ञा की आभा लौट आती।" विचार और अनुभूति कितनी गंभीर होने पर, अन्त:दृष्टि कितनी भेदक होने पर, एक स्कूली छात्र ये बातें कह सकता है; सोच कर ही आश्चर्य होता है।

आचार्यदेव जब भी कहीं जाते, छात्र दल के दल में उनके पास आते थे। कलकत्ता के आश्रम में सहस्त्रों छात्र युवक उनके पास आते। वे उन्हें संयमित जीवन तथा ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश देते थे। वे उनके आहार-विहार, संवाद, पोषाक

आदि में सर्वत्र, सर्वदा संयम पालन का उपदेश देते थे। आश्रम के ब्रह्मचर्य विद्यालय और छात्रावास में जो लड़के रहते थे उनका लालन-पालन, माता के स्नेह तथा पिता के कठोर शासन से वे करते थे। विभिन्न समय पर उपदेशों में, या अपनी चिट्ठियों में, नवदीक्षित ब्रह्मचारियों को जो लिखते थे, उनसे हम यह जान सकते हैं कि भावी राष्ट्र के निर्माण में छात्रों की भूमिका का निर्देश वे कर गये हैं।

हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति, गुरुकुल पद्धति के अनुरूप ही हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी होनी चाहिये; इस आदर्श की स्थापना के लिये आचार्यदेव ने मदारीपुर में १९२३ में "ब्रह्मचर्य विद्यालय" की स्थापना की। आश्रम जीवन में विद्यार्थी अपनी शिक्षा के दौरान ही स्वावलम्बी और कर्मठ बन सकें, इसका भी प्रावधान रखा गया। इसी वर्ष दिघापातिया के दानशील, कुमार हेमेन्द्र कुमार राय की पृष्टपोषकता में 'राजशाही स्टुडेण्ट्स होम' की स्थापना हुई। १९२५ ई० में खुलना में ब्रह्मचर्य विद्यालय की स्थापना हुई। १९२६ सन् में संघ का कार्यालय जब कार्नवालिस स्ट्रीट में था तब आचार्यदेव ने बालकों और युवकों को नैतिक चरित्र-गठन की शिक्षा देने के लिये 'संघ सेवक सम्मिलनी' की प्रतिष्ठा की थी। प्रत्येक रविवार की संध्या के समय इस सम्मेलन की वैठक होती थी। उत्साही युवकों के एक दल के प्रयास से इस सम्मेलन का काम सुचारु रूप से परिचालित होता था।

आचार्यदेव ने, ब्रह्मचर्य विद्यालय के छात्रों को, छात्रजीवन में चरित्र और शरीर गठन में ब्रह्मचर्य पालन के महत्व को, अत्यन्त सुन्दर उदाहरणों द्वारा समझाया है। उन उपदेशों में से कुछ-एक का उल्लेख यहां कर रहा हूँ।

मदारीपुर के ब्रह्मचर्य विद्यालय के छात्र थे—धीरेन्द्र नाथ शाँखारी। वे लिखते हैं, "एक दिन स्वामीजी महाराज ने एक लालटेन दिखलाते हुए कहा—देखो यह लालटेन, जब तक इसमें तेल है तब तक यह जलती है। तेल खत्म हो जाने पर बुझ जाती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य ही इस जीवन का सार है। ब्रह्मचर्य का क्षय करने पर मनुष्य के प्राण-प्रदीप निष्प्रभ होने लगते हैं; मनुष्य का शरीर और मन दुर्बल हो जाता है; नाना प्रकार की व्याधियाँ दिखलायी पड़ने लगती है। मनुष्य अकाल मृत्यु को प्राप्त होता हैं। खबरदार! कभी भी कुसंगति न करना, कुसंगति में रहना और अपने गले पर छुरी फेरना, एक ही बात है। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति क्या कभी अपने हाथों अपने गले पर छुरी फेरता है?"

एकदिन बाजितपुर में एक लालगुलाब का फूल हाथ में लेकर धीरेन्द्रनाथ से कहने लगे—"देखो तो कितना सुन्दर गुलाब का फूल है।"

"किन्तु कली में ही यदि कीड़े लग जाते तो भी क्या यह फूल इतना सुन्दर खिल

सकता था ? तुम लोगों के जीवन को भी इसी सुन्दर भाव से खिलाना चाहता हूँ। किन्तु सावधान, बचपन में ही कुअभ्यास में जीवन न बिताना, खुद ही जीवन का सर्वनाश कर लोगे। १५ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक मनुष्य की द्रुत वृद्धि का समय है। उस समय ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर मनुष्य के देह की वृद्धि ठीक-ठीक नहीं हो पाती। स्मृतिशक्ति नष्ट हो जाती है। मनुष्य जीवन में किसी प्रकार के सदगुणों का प्रकाश नहीं हो पाता।"

उनकी दृष्टि चारो ओर रहती थी। इस संबंध में धीरेन्द्र नाथ ने लिखा है, "वे आहार एवं निद्रा संयम के संबंध में प्रायः ही उपदेश देते थे। केवल उपदेश देकर ही वे शान्त न होते थे। भूख की तुलना में, कोई बालक एक मुट्ठी अन्न भी अधिक न खा ले, इस ओर भी माता सी सतर्क दृष्टि रहती थी। इससे बच्चों के स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। खाने के समय कोई भूल कर बैठने पर बहुत डाँटते थे। व्यायाम के लिये उत्साहित करते हुए कहते, ब्यायाम से शरीर स्वस्थ एवं सबल रहता है। व्यायाम ब्रह्मचर्य पालन की दृष्टि से भी उपकारी है।"

उपमा के प्रसंग से स्वामी आत्मानन्दजी द्वारा लिखित एक कहानी याद आ रही है। कहानी एक केले के गुच्छे को लेकर थी। पर उसके माध्यम से ही स्वामीजी ने अपने सन्यासी सन्तानों के सामने त्याग वैराग्य एवं जीवन की नश्वरता को जिस प्रकार सरल भाव से समझाया था, वह पुस्तकें पढ़कर या नीतिकथाएं सुनकर भी नहीं सीखी जा सकतीं।

स्वामी आत्मानन्दजी ने जिस प्रकार कहानी का वर्णन किया है वह अवर्णननीय है। संक्षेप में कहूँगा तो पाठक रसास्वादन से वंचित रह जायेंगे। अतः वैसी की वैसी कहानी पाठकों के सामने रखता हूँ जैसी 'कण्ठे कण्ठे करूणाकथा' (भाग ४) में आई है—

"कलकता के आश्रम में, एकदिन लगभग दस बजे प्रातः एक भक्त ने मर्तमान केलों के गुच्छे से भरी एक शाख महाराज के चरणों में निवेदित कर उन्हें प्रणाम किया। स्वामीजी नें थोड़ा मुस्कुरा कर सेवक को केलों के उस शाख को एक किनारे रखने के लिये कहा तथा भक्त से पूछा—यह क्या तुम्हारे घर का है ? भक्त ने गद्गद् भाव से कहा—हाँ, बागीचे के पहले झाड़ का पहला फल है, आपकी सेवा में लाया हूं।

दो-तीन दिन के बाद ही केलों का रंग बदलने लगा और भी दो-तीन दिन बाद कुछेक बड़े केले पक कर तैयार हो गये। स्वामीजी महाराज के स्नान और आहार के समय आश्रम के साधुओं में से कई उपस्थित रहते थे। आज एक बुजुर्ग साधु ने दो

केले छीलकर स्वामीजी महाराज के दूध के कटोरे में डाल दिया। किन्तु स्वामीजी महाराज पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। उन्होंने स्वाभाविक भाव से ही उसमें से जितना थोड़ा ग्रहण करना था करके उठा कर सबको प्रसाद के रूप में वितरित कर दिया। इसके बाद और कोई चर्चा न हुई। केले अच्छी तरह पक गये और सारा कमरा उनकी सुगन्ध से भर उठा। फिर एक और साधु केले लेने जा रहा था कि आचार्यदेव ने उठते हुए कहा, रहने दो। इसके बाद भी और एक साधु केला लेने गया तो उन्हें भी लाने से मना कर दिया गया। केले धीरे-धीरे एक-एक कर विवर्ण होने लगे पर खराब नहीं हुए थे। उनके सेवक ने दुखित हो सबसे कहा—इतने अच्छे केले नष्ट हुए जा रहे हैं, अपने भी नहीं खायेंगे न ही किसी और को खाने देंगे। भक्त ने खुद नहीं खाया, बच्चों को नहीं दिया, उनके मुख का ग्रास लाकर गुरूदेव को दिया, और उसकी ऐसी दुर्दशा। मुझे ही तो ये सड़े हुए केले उठाकर फेंकने होंगे और जगह साफ करनी होगी और न जाने कितनों की बाते भी सुननी पड़ेगी। लोग तो मुझे ही दोष देंगे।

सेवक की बातें स्वामीजी महाराज के कानों में न पड़ी हों ऐसी बात नहीं है। और न पड़ी भी हों तो क्या हुआ ? वे तो हमारे मन की बातें इससे भी अधिक अच्छी तरह जानते हैं। मन के किस गहनगुहा के अंदर कौन सी बात छिपी बैठी है, यह चाहे हम न भी समझ सकें पर वे तो जानते हैं और हमें उस ओर से सावधान भी करते ही हैं। इस बार तो वे जान-बुझकर सब कर रहे थे।

रहस्य गहरा होता जा रहा है। केले खाने के योग्य नहीं रह गए। उनमें से रस झरने लगा है। एक प्रकार के कीड़े और मक्खियां भिनभिनाने लगे हैं। अब तो फेंकने के सिवाय और कोई रास्ता ही नहीं है। जो भी कमरे में आता है गंध के मारे नाक फटी जाती है, सोचता है, अबतक इन सड़े हुए केलों को फेंका क्यों नहीं गया ?

रात में भोजन के बाद सन्तानगण एक-एक कर प्रणाम कर गुरूदेव के पास बैठ गये। स्वामीजी नाना विषयों की आलोचना कर रहे थे। अचानक केलों की ओर देखकर बोले—देखो तो केलों की दुरावस्था, क्या शोचनीय अन्त है! एक समय वे रूप, रस, गन्ध से भरे सबको ललचा रहे थे; अब वे ही रूप, रस, गन्ध विहीन हैं, सबके हृदय को घृणा से भर रहे हैं। एक केला खाने के लिये जो लालायित हो उठा था आज भूल कर भी वह उस ओर ताकता नहीं हैं। बाल्यावस्था का हंसीभरा मुख, किशोर की कमनीय कान्ति, यौवन का रूप लावण्य जराभाव से अथवा व्याधि के पीड़ा से ऐसे ही मलिन हो जायेंगे। आँखों के सामने सब रोज ही ऐसा देख रहें हैं किन्तु चेतना का संचार कितनों में हो रहा है? तुम सब सर्वत्यागी सन्यासी हो।

विषय की इस विकृति को सदा मन में जगाये रखना, वैराग्य चिन्ता सर्वदा जाग्रत किये रखना। आत्मभाव में समाहित होने की चेष्टा करना। मुझे पता है, अगर मैं अपने हाथों से सबको एक-एक केला देता तो सब तृप्त होते। किन्तु रसास्वादन की यह तृप्ति कितनी देर तक रहती है। फिर रह जाती उसकी स्मृति। उस स्मृति को बारबार लाकर सब तृप्ति पाते तथा विवेक-वैराग्य से दूर हट जाते। अत: मैने वैसा नहीं होने दिया।"

स्वामीजी महाराज थे आचरणसिद्ध आचार्य। अपने आचरण द्वारा ही वे भक्त को उपदेश देते थे। वे थे उपयुक्त लोक-शिक्षक। अति साधारण उपकरण या उदाहरण सामने रख कर इस प्रकार शिक्षा देते कि शिक्षणीय विषय प्रत्येक के हृदय में अंकित हो जाता। यही उनका स्वातन्त्र्य था, यही थी उनकी विशेषता।

प्राचीन गुरूकुल के आदर्श पर ब्रह्मचर्याश्रम और स्टुडेण्ट्स होम की प्रतिष्ठा की गयी थी। राजशाही स्टुडेन्ट्स होम में केवल कांलेज के विद्यार्थी ही रहते थे। वे ब्रह्मचर्याश्रम के लड़कों से मन तथा उम्र दोनों दृष्टियों से अधिक परिपक्व थे। उनके सामने कभी-कभी कोई मानसिक संकट आ उपस्थित होता, कभी जीवन के लक्ष्य और आदर्श के संबंध में वे उद्भ्रान्त हो उठते। ऐसे संकट की स्थिति में वे आचार्यदेव की शरण में जाकर उपस्थित होते। आचार्यदेव जब उनके मन को संशयग्रस्त देखते, उनमें हताशा के भाव देखते तब अपनी ओज एवं उत्साहवर्द्धक वाणी द्वारा उनके सामने सत्य और, कर्त्तव्य का पथ खोल देते। राजसाही होम के बी.ए. के एक जिज्ञासु विद्यार्थी (परवर्तीकाल के स्वामी कृष्णानन्द) की चिट्ठी के उत्तर में आचार्यदेव ने पत्र में जो लिखा था उनकी वह अमृतमयी वाणी चिरदिनों तक छात्रों को प्ररित करेगी। तरुण-समाज में आत्मविश्वास और कर्त्तव्यनिष्ठा में अटल रहने की प्रेरणा देती है वह वाणी। उस पत्र का एक अंश यहाँ दे रहा हूं—

"आत्मशक्ति में आस्था जगाकर, आत्मविश्वास के बल से बली होकर, शास्त्र एवं सदाचार का सहारा लेकर शत्रु और इन्द्रिय संयम रूपी महाव्रत का पालन कर सको तो अत्यन्त कम समय में ही तुम्हारी आत्मशक्ति उद्बुद्ध हो जायेगी और तुम आत्मतत्व की उपलब्धि कर पाओगे। रिपु और इन्द्रियों पर अपने संयम का प्रभाव प्रसारित कर सकने पर अपने अन्दर की सामर्थ्य, विक्रम-पराक्रम को देख स्तम्भित हो जाओगे।"

"असीम शक्ति सामर्थ्य, विपुल विक्रम-पराक्रम, मनुष्य के अन्दर ही है। किन्तु उसका विकास न हो पाने के कारण मनुष्य कई बार अत्यन्त निर्जीव और जड़ के समान पड़ा रह जाता है।"

"आज भारत की महामुक्ति और महामिलन का दिन है। आज कोई भी माया-मोह में आवद्ध न रह सकेगा। विभ्रम, विस्मृति, विभ्रान्ति को चूर्ण-विचूर्ण कर अब प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-आत्मशक्ति को उदबुद्ध करने का प्रयास करना होगा।"

आचार्यदेव ने स्वयं अपने छात्र जीवन में त्याग, सत्य, संयम और ब्रह्मचर्य को अपने जीवन के आदर्श के रूप में ग्रहण किया था। परतर्वी काल में जितने भी तरूण युवक और विद्यार्थी उनके सामने आते उनको वे इन्हीं आदर्शों को अपनाने का उपदेश देते थे।

आचार्यदेव ने एक तरूण ब्रह्मचारी को लिखा था, "तुमलोगों को त्याग का ज्वलन्त उदाहरण बनना होगा। तुम लोग सनातन आदर्श से प्रेरित होकर, आर्यऋषियों का आसन ग्रहण करके इस अधोपतित देश को नीति एवं धर्म के रास्ते पर लाओगे। नीति और धर्म का प्रचार करने के लिये, त्याग, सत्य, ब्रह्मचर्य, संयम के महात्म्य के उद्घोष के लिये तुम्हारा जन्म हुआ है। इस कार्य के लिये तुम स्वयं प्रस्तुत हो, यथोचित शक्ति सामर्थ्य का संचयन करो। तुम सब एक-एक सिंह शावक हो। कई हाथियों का बल तुममें है।"

और एक को लिखा था, "मनुष्य की शक्ति जहाँ है वहीं पर मनुष्य का मनुष्यत्व, और वीर का वीरत्व है। वहीं पर मनुष्य अनन्त उद्यम अध्यवसाय से समस्त दुःख दैन्य की उपेक्षा कर, अविचलित, अचल, अटूट, भाव से अपने संकल्प के पालन में लगा रहता है।"

दूसरे को लिखा था—"तुम अमृत की सन्तान हो। किसी भी प्रकार से विचलित न हो। तुम स्वतःपवित्र, स्वतःशुद्ध हो तुम्हें किसी का भी भय नहीं है। तुम्हें कौन नष्ट कर सकता है? तुम धीर स्थिर हो, आत्मविश्वासी हो, आत्मशक्ति के उत्थान की चेष्टा में रत हो। तुम वीरों की सन्तान हो, तुम्हारे लिये अब दुर्बलता का स्थान ही कहाँ है?" (श्री श्री युगाचार्य जीवन चरित—स्वामी वेदानन्द)।

भारत का भविष्य, भारत के तरूण दल हैं। राष्ट्र के कार्य में उन्हें एक गुरूत्वपूर्ण भूमिक का निर्वाह करना होगा। इसी कारण उस राष्ट्र-निर्माण का प्रथम चरण था—नैतिक आन्दोलन तथा, ब्रह्मचर्य और संयम के आदर्श पर छात्र समाज का निर्माण। सन १९२३ में कलकत्ता में संघ-सेवक-सम्मिलनी गठित की गयी थी। इस सम्मिलनी का कर्मक्षेत्र विस्तृत किया गया। स्कूल, कॉलेज, होस्टेल, घरों में, रास्तों पर प्रचारपत्र बांटे गये तथा छात्र और युवकों को आगे आने का आह्वान किया गया। उन्हें आचार्यदेव के पास व्यक्तिगत रुप में उपस्थित हो उपदेश और साधना

ग्रहण करने को कहा गया। "ब्रह्मचर्य और नैतिक चरित्र गठन की अभिनव शिक्षा साधना" नामक प्रचारपत्र ने कलकत्ता के युवासमाज, अध्यापक, शिक्षक समुदाय में एक अभूतपूर्व जागृति की सृष्टि की थी। संघ-सम्मिलनी अधिवेशन के दिन रविवार को आश्रम में तिल रखने की जगह न रहती थी। स्कूल कॉलेज के सैकड़ों विद्यार्थी, अध्यापक, शिक्षक, नौकरीपेशा व्यक्ति आश्रम में आकर जमा होते। आचार्यदेव के कक्ष से लेकर फुटपाथ तक दर्शनार्थी एवं उपदेशप्रार्थियों की भीड़ लगी रहती। आचार्यदेव एक-एक कर प्रत्येक को ही दर्शन और उपदेश देते थे। रविवार के अतिरिक्त अन्य दिन भी लोग दर्शन तथा उपदेश के लिये आश्रम में आते थे। चैत्र-वैशाख की असह्य गर्मी में भी लोग बाहर तीन-चार घंटे खड़े रहते थे, दर्शन की प्रतीक्षा में। सारा दिन इतनी भीड़ होती थी कि आचार्यदेव भोर तीन बजे आसन पर आ बैठते, ग्यारह बजे के बाद कुछ देर विश्राम लेकर फिर दोपहर तीन बजे बैठते तो रात के ग्यारह बजे उठते। क्रमशः संयमन और साधना का यह नैतिक आन्दोलन सारे बंगाल, फिर भारत के अन्य प्रदेशों में भी फैल गया। संघ का सन्यासी दल सारे भारतवर्ष में घूमकर आचार्यदेव के त्याग, संयम, ब्रह्मचर्य और सेवा के आदर्श का प्रचार करने लगे। शहर के विशिष्ट व्यक्तियों के अनुरोध पर स्वयं आचार्यदेव बंगाल तथा भारत के अन्य प्रान्तों में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये यात्रा पर निकले एवं जहाँ भी जाते वहीं भीड़ इकट्ठी हो जाती। हजारों की संख्या में लोग उनकी अभ्यर्थना के लिये आगे आते। लोग उनसे प्रार्थना करते, उनके आशीर्वाद की कामना करते, उनसे दीक्षा की इच्छा प्रकट करते। गृहस्थ भक्तों को वे समय देते हुए कहते—गृहस्थों! तुम्हें गृहस्थ ही रहना होगा। धर्म के लिये तुम्हें संसार छोड़कर जंगल में जाकर, निर्जन स्थान पर योगध्यान लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस व्यक्ति की जो वृत्ति है, जीविका का जो साधन है, वह उसीमें लगा रहे। धर्म पालन के लिये तुम्हें वहां से एक कदम भी हटने की आवश्यकता नहीं है। भारत के ऋषियों ने, भारत के भगवान श्रीकृष्ण ने तुम्हें स्वधर्म पालन की शिक्षा दी है।"

"प्रातःकाल से सायंकाल, सायंकाल से प्रातःकाल तक जो कुछ भी तुम करते हो—चिन्तन, कथन, कार्य, समस्त ही जगजननी की ही सेवा है, पूजा है। विश्वमाता की तुष्टि और तृप्ति के लिये ध्यान करो। अनासक्त भाव से, भगवान के श्रीचरणों में, फलाफल की चिन्ता छोड़, वीरता से, विक्रम से, जीवन के पथ पर चलो, यही गार्हस्थ जीवन की साधना है।"

"चाहिये योग में संयम, संकल्प की दृढ़ता, कर्तव्य निष्ठा, कर्म के प्रति उत्साह, भोग्य वस्तु और ऐहिक सम्पदा की अनित्यता का बोध, आचार्य एवं गुरू में

अविचलित श्रद्धा, शास्त्र और सदाचार में दृढ़विश्वास, मन प्राण की सरलता और कपटहीनता।" (गार्हस्थम्)

उदात्त कण्ठ से उन्होंने घोषणा की थी, "धर्म माला-झोला में नहीं है, तिलक-त्रिपुण्ड में धर्म नहीं है, धर्म असन-वसन में नहीं है, धर्म पुराण-कुराण में नहीं है, धर्म मन्दिर, मस्जिद, गिरिजा में नहीं है। धर्म है त्याग, संयम, सत्य और ब्रह्मचर्य में। धर्म है आचार, अनुष्ठान और अनुभूति में।"

हिन्दू समाज समन्वय-आन्दोलन, मिलन-मन्दिर और रक्षीदल गठन

आचार्यदेव ने १९१९ से १९३४ तक धार्मिक और नैतिक आदर्श के प्रचार, जनसेवा, समाजसेवा, तीर्थसंस्कार आदि कई कर्म धाराओं का प्रवर्तन किया था। १९३४ से जीवन के शेष आठ बर्ष हिन्दू समाज गठन के उद्देश्य से हिन्दू मिलन-मन्दिर की स्थापना और रक्षीदल के गठन कार्य में लगे रहे। हिन्दू जाति गठन के उद्देश्य से हिन्दू समाज के समन्वय का आन्दोलन, आचार्यदेव के जीवन का श्रेष्ठतम कार्य है। उनका उद्देश्य धर्म के आधार पर देश का निर्माण, प्रारंभ से ही था। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही हिन्दू समाज समन्वय आन्दोलन का प्रारंभ किया गया। भारत की सभ्यता तपोवन की सभ्यता है। इस देश का समाज धर्म पर टिका हुआ है। समाज व्यवस्था का केन्द्र है गांव। इस देश की अधिकांश जनता ही ग्राम में वास करती है। इससे पहले जिस नैतिक आन्दोलन का प्रवर्तन किया था उसका केन्द्र शहर था। जाति गठन के लिये जिस आन्दोलन का प्रवर्तन किया गया वह ग्रामाभिमुख था। शहर के स्वल्प संख्यक शिक्षित मध्यवित्त समाज के बीच ही यह आन्दोलन सीमित न था। कोटि-कोटि ग्रामवासियों को संगठित करने के लिये उनके बीच जाना होगा। उपेक्षित, शोषित, निःस्व जनगणों की शिक्षा, उन्नयन, संगठन और रक्षण की व्यवस्था न कर पाने पर जातिगठन के आदर्श को वास्तविक रूप देना संभव नहीं है। इसी से आचार्यदेव ने हिन्दूजाति गठन के उद्योगपर्व में अशिक्षित, उपेक्षित, अस्पृश्य हिन्दुओं के बीच प्रवेश कर, उनमें आशा, आश्वासन, उत्साह, आनन्द जगा कर, नवजागरण का समाचार सुना कर, अपनी अलौकिक, अमोघ संकल्प शक्ति तथा अलौकिक आशीर्वाद से उन्हें संचालित करना शुरू किया। (श्री श्री युगाचार्य जीवन चरित)।

एक विराट आन्दोलन के प्रवर्तन के लिये जिस अवसर की आवश्यकता होती है आचार्य देव उसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। १९३४ ई० में उन्होंने हिन्दू समाज

में जिस विराट आन्दोलन का सूत्रपात किया था उसके मूल में बाजितपुर में घटी एक छोटी सी घटना है। इस घटना का उल्लेख स्वामी विकासानन्दजी ने अपनी पुस्तक में किया है।

वर्षाकाल था। जुलाई १९३४ ई०। एक दिन बाजितपुर के प्रणव मठ के समीप के एक मैदान में कुछ युवक कबड्डी खेल रहे थे। दोनों दलों में बड़ी जोरदार प्रतियोगिता छिड़ी हुई थी। मुस्लिम युवक बार-बार हार रहे थे। हिन्दू दर्शकों के उत्साह और मुस्लिम दर्शकों के क्रोध से कहासुनी शुरू हुई और फिर दंगा शुरु हो गया। हिन्दू खिलाड़ी और दर्शकों ने मार खायी। हिन्दू बुजुर्ग जो मध्यस्थता करने आये उन्हें भी मार खाकर पीछे हटना पड़ा। जो भाग गये थे उन्हें घर से बाहर खींचकर मारा गया। गांव में सर्वत्र आतंक फैल गया "हिन्दुओं को और भी सबक सिखाना होगा" इस धमकी से आतंकित हो हिन्दुओं ने कलकता, आचार्यदेव के पास खबर भेजी।

बाजितपुर आचार्यदेव की जन्मभूमि है। वही उनकी तपोभूमि है, सिद्धपीठ है। खबर पाते ही वे गाँव में आ पहुँचे। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही पक्षों के लोग उनके भक्त थे। अत: उन्होंने दोनों पक्षों के लोगों को बुलवाया। दोनों ओर की बातें सुनीं, सोचने लगे क्या निर्णय लिया जाये।

पहले उन्होंने हिन्दुओं को बुलाकर सब सुना। फिर पूछा—तुमलोगों ने मुकदमा दाखिल क्यों नहीं करवाया? हिन्दुओं का कथन था—घर के सब काम काज छोड़ हंगामा कौन करे? फिर किसी प्रकार के झमेले में वे फंसना नहीं चाहते। हिन्दुओं की शान्तिप्रियता के छद्म में छिपी जड़ता एवं क्लीवता को आचार्यदेव भांप गये। फिर भी उनकी परीक्षा लेने के लिये उन्होंने कहा "तुम लोग कचहरी में नालिश करो।" उन्होंने कहा, नहीं महाराज हम गरीब आदमी मामले मुकदमे के लिये रूपये कहाँ सें लायेंगे। आचार्यदेव ने आश्वासन देते हुए कहा, "मुकदमें के लिये रूपये मैं दूंगा। कानून की सहायता से अन्याय का सामना करो।" किन्तु हिन्दू भय के मारे राजी न हुए। आचार्य देव ने कहा, "फिर तुम लोगों ने मुझे खबर क्यों भेजी? मै तुम लोगों के लिये क्या कर सकता हूँ?" हिन्दुओं ने कहा, "महाराज, कुछ तो व्यवस्था करिये जिससे हमारे ऊपर फिर से अत्याचार न हो पाये।" आत्ममर्यादाहीन हिन्दूसमाज के अध:पतन का यह रूप देख आचार्यदेव व्यथित हो उठे।

इसके बाद उन्होंने मुसलमानों को बुलवाया। उन्होंने उनसे कहा—"तुम लोगों नें अन्याय किया है। हिन्दू इसका प्रतिकार करेंगे। तुम लोग क्या करना चाहते हो?" वे आचार्यदेव को अपना मानते थे और उनकी श्रद्धा करते थे। कोई बात छिपाये बिना उन्होंने कहा, वे इसी की आशंका कर रहे थे कि हिन्दू कुछ अवश्य करेंगे। वे भी उसके लिये तैयार हैं उन्होंने चंदा इकट्ठा किया है, सात सौ रूपये जोड़ लिये हैं

प्रयोजन होने पर और भी जोड़ लिये जायेंगें। आचार्यदेव ने कहा, मैं हिन्दुओं के लिए एक लाख रूपये खर्च करूंगा। उन्होंने कहा, "महाराज हमें पता है आप हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचायेंगे, केवल डरा रहे हैं।" तब आचार्यदेव ने कहा, "मैं हिन्दू मुसलमान कुछ भी नहीं समझता। जिसने अन्याय किया है उसे ही सजा मिलेगी। तुम्हीं लोग बतलाओ किसने अन्याय किया है? हिन्दुओं ने या मुसलमानों ने?

मुसलमानों का आचार्यदेव के सामने झूठ बोलने का साहस न हुआ। उन्होंने स्वीकार किया कि दोष मुसलमानों का ही है। आचार्यदेव ने कहा, तुम लोग हट जाओ। अन्यायियों को उचित दण्ड मिलना चाहिये। मुसलमानों ने विनीत भाव से कहा, महाराज यह तो नहीं हो सकेगा। अन्यायी हमारे ही जातिभाई हैं, उन्हें हम किस प्रकार त्याग दें? आचार्यदेव के अनुगत, भक्त, आपद-विपद में उनके द्वारा उपकृत मुसलमान, किसी भी प्रकार आचार्यदेव के आदेश पर भी अपने अन्यायी, जाति भाई को सामने लाने को राजी न हुए।

आचार्यदेव ने दोनो पक्षों को पास-पास रखकर विचार किया—हिन्दू-मुसलमान में पार्थक्य कहाँ पर है? यद्यपि आचार्यदेव ने दोनों ही पक्षों को बुलाकर समस्या का सठीक समाधान कर दिया था पर वे जानते थे कि यह समाधान सामयिक था समस्या का स्थायी समाधान तो हुआ ही नहीं।

इस छोटी सी एक घटना के विश्लेषण से आचार्यदेव समझ गये थे भारत में मुसलमान जनसंख्या की दृष्टि से एक चौथाई होते हुए भी संघबद्ध हैं, स्वजातिवत्सल हैं, सतर्क और सचेष्ट है, इसी कारण वे शक्तिशाली हैं। और हिन्दू संख्या में अधिक होने पर भी विच्छिन्न, निःचेष्ट, स्वधर्म के प्रति निष्ठाहीन, स्वजाति के लिये प्रीति रहित हैं। इसी कारण यह विशाल हिन्दू समाज आज इतना दुर्बल है। हिन्दूओं की यही जातीय समस्या है। इस समस्या का शिघ्र समाधान करना होगा। हिन्दू जाति के संगठन का जो संकल्प लिया था उसे तुरन्त ही कार्यान्वित करना होगा।

संकल्प स्थिर कर उन्होंने प्रायः पन्द्रह दिनों तक संघ की सन्तानों के साथ विचार विमंर्श किया। इस विचार विमर्श के दौरान उन्होंने उनके सामने देश, जाति और समाज का चित्र उपस्थित किया। वे राजनीति से सदा दूर रहे अतः उस ओर वे गये ही नहीं। धर्म की भित्ति पर ही संघ और गठित संस्थाओं की कार्यधारा परिचालित करने का निश्चय किया। धर्म के आधार पर ही सारे भारत के विराट हिन्दू समाज को मीलित होने का आह्वान करना होगा। धर्म ही होगा महामिलन और महासमन्वय की आधार भूमि।

इससे पहले बंकिमचन्द्र ने धर्म के आधार पर राष्ट्र गठन का सोचा था उसके बाद

स्वामी बिवेकानन्द ने उदात्त कण्ठ से राष्ट्र का आह्वान किया था। धर्म की भित्ति के आधार पर ही उन्हें संगठित करने का प्रयास किया था। किन्तु एक व्यापक परिकल्पना लेकर कर्मक्षेत्र में कोई भी आगे नहीं आया था। धर्म की भित्ति पर राष्ट्रगठन का आन्दोलन और कार्य को रूप देने की प्रचेष्ठा में आचार्य स्वामी प्रणवानन्दजी ही सर्वप्रथम आगे बढ़ कर आये थे। इस क्षेत्र में वे अन्यतम है। उनका कथन था—भारत के वृहत्तर जनसमुदाय को असंगठित रख कर भारत के महान राष्ट्र गठन की कल्पना करना अवास्तव है। हिन्दुओं के अभ्युदय से ही भारत का अभ्युदय होगा। हिन्दुओं का संगठन ही भारत का संगठन है। हिन्दुओं का आपसी मेल होने से हिन्दू मुसलमानों का मेल द्रुतगति से होगा। अत: भारत की सबसे बड़ी समस्या यदि कोई है तो वह केवल हिन्दु राष्ट्र के गठन की समस्या है।

हिन्दु समाज-समन्वय-आन्दोलन, आत्मविस्मृत हिन्दुजाति के संगठन का आन्दोलन है। उनकी इच्छा थी, हिन्दुओं की आत्मशक्ति को जगा कर उसे एक साहसी, शक्तिशाली, संघबद्ध जाति के रूप में खड़ा करना। इसी उद्देश्य को लेकर मिलन-मन्दिर तथा रक्षीदल गठन की व्यवस्था की गयी।

आचार्यदेव अपने द्वारा प्रवर्त्तित आन्दोलन से किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता की भावना को बढ़ावा देने की सोच भी नही सकते थे। उनकी चाहत थी कि हिन्दू अपनी क्लीवता का त्याग कर संघबद्ध और शक्तिशाली हो उठें। विच्छिन्न हिन्दू समाज एकता और प्रीति के दृढ़ बन्धन में बंध जाये।

हिन्दू समाज-समन्वय-आन्दोलन, मिलन-मन्दिर, रक्षीदल गठन के उद्देश्य के संपर्क में विभिन्न अवसरों पर जो कुछ उहोंने कहा था, उसे पढ़ते ही उस आन्दोलन का प्रयोजन, उसके गुरूत्व के प्रति हमारी धारणा सुस्पष्ट हो जायेगी। यहाँ उनके विभिन्न अवसरों पर दिये वक्तव्यों के कुछ अंश दिये जा रहे हैं—"मैं जिस आन्दोलन का प्रवर्तन करना चाहता हूँ वह हिन्दू समाज के संस्कार और संगठन के लिये होगा। मैं समग्र हिन्दू जाति को संघबद्ध और शक्तिशाली बनाना चाहता हूँ।"

इस देश में मुसलमान हैं, ईसाई हैं, सिख हैं, और है एक विराट जन सम्पप्रदाय जिसका परिचय अमुसलमान है—हिन्दू नहीं। इसी से उन्होंने कहा था, "जो जैसा है उसे उसी रूप में पुकारने पर वह जवाब देता है। हिन्दू को हिन्दू कहकर बुलाने वाला आज कोई नहीं है। इसी से मैं हिन्दू को हिन्दू नाम से पुकारना चाहता हूँ। मैं समग्र हिन्दू जनसाधारण को "मैं हिन्दू हूँ" इस मंत्र का जाप करवाना चाहता हूँ। यह हिन्दुत्वबोध जागने पर ही उनका विलुप्त पुरुषार्थ, शक्ति, सामर्थ्य जाग उठेगा।"

छिन्न-भिन्न, विशृंखल, कुसंस्कार ग्रस्त हिन्दूसमाज के बीच सामाजिक संस्कार

की आवश्यकता है। इस संबंध में आचार्य देव के विचार इस प्रकार थे, "हिन्दू समाज के मध्य असंख्य भेद और वैषम्य हैं। इन सबका उन्मूलन कर, एक अखण्ड समाज गठन की चेष्टा करनी है। समाज जिस रूप से विशृंखल और कुसंस्कारग्रस्त हो उठा है, बिना तोड़-फोड़ के उसका संस्कार संभव नहीं है। और संस्कार न करने पर संगठित करने का क़ार्य आगे नहीं बढ़ सकता। पर हम ऐसा कोई भी तरीका नहीं अपनायेंगे जिससे समाज में बिद्रोह फैले। समाज अपनी गति, अपनी पद्धति के अनुसार ही चलेगा। उसके पथ पर से बाधाविघ्न, कूड़ा-करकट साफ करके उसकी गति को बाधाहीन कर देना ही हमारा काम है। संस्कार के नाम पर, समाज पर आघात करके उसे क्षत-विक्षत करना नहीं चलेगा, इसे बन्द करना होगा।"

इन सब आन्दोलनों में संघ की क्या भूमिका होगी इस पर बोलते हुए उन्होंने कहा था, "मैं प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक श्रेणी, शहर के सब श्रेणियों के हिन्दुओं में परस्पर मेल-मिलाप चाहता हूँ। मैं उहें संघबद्ध करना चाहता हूँ। मेरे संगठन या संस्कार का मूल आधार है—मिलन; सबसे पहले काम्य है—मिलन। मिलन के पथ पर जो-जो भाव, जो कुछ भी सहायक होगा वह सब हमें चाहिये। मिलन के पथ में जो बाधक हो, विघ्नकारी हो, ऐसा कुछ भी हमें स्वीकार्य नहीं है। सबसे पहले चाहिये सर्वश्रेणी के मिलन का क्षेत्र एवं सार्वजनीन मिलन अनुष्ठान समारोह।"

"हाट-बाजार में, सभा-समिति में, क्लब में, खेलके मैदान में लोग एक दूसरे से मिलते हैं। किन्तु इस मिलन से जाति के जीवन-गठन में किसी प्रकार से सहायता नहीं मिलती। मिलन चाहिये धर्म और आदर्श की भित्ति पर। इसी लिए हिन्दू मिलनक्षेत्रका नाम देना होगा "हिन्दू-मिलन-मन्दिर"।

भाग्यकुल के प्रमथनाथ राय ने आचार्यदेव से पूछा था "महाराज देश में हजार मन्दिर हैं, आप फिर से मन्दिर क्यों बनाना चाहते हैं?" इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था, मेरा मन्दिर ईंट-पत्थर द्वारा निर्मित मन्दिर नहीं है। ईट-पत्थर जोड़-जोड़ कर मनुष्य मन्दिर तैयार करता है, मैं हिन्दू समाज के खण्ड-खण्ड जोड़ कर, छिन्न-विच्छिन्न अंशों को जोड़कर विराट हिन्दू-मिलन-मन्दिर तैयार करूंगा। मेरा मिलन-मन्दिर होगा हिन्दुओं का सार्वजनीन मिलनक्षेत्र। सब श्रेणी के हिन्दुओं के भजन उपासना तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्या का समाधान क्षेत्र। इस मिलन मन्दिर का सहारा पाकर ही हिन्दू संघबद्ध हो उठेंगे, शक्तिशाली हो उठेंगे।

"हिन्दुओं में विद्या है, बुद्धि है, अर्थ-सामर्थ्य है, नहीं है तो केवल संघशक्ति। एक संघशक्ति के अभाव से ही आज हिन्दू सांप्रदायिक अत्याचार और लांछना से विपन्न है। मैं सारे देश में मिलनमन्दिर का जाल फैलाकर बिखरे हुए हिन्दुओं को

एकसूत्र में पिरोने का काम करूंगा, उन्हें संगठित करूंगा। तब जो जहां भी होगा, प्रत्येक हिन्दू अनुभव करेगा, हमारे पीछे कोटि-कोटि भाइयों की शक्ति मौजूद है। दुष्ट-दुर्वृत्तों का दल तब अपने आप ही ठण्डा पड़ जायेगा।"

मिलन मन्दिर होगा सब श्रेणियों के हिन्दुओं का मिलनक्षेत्र। यहाँ पर अस्पृश्यता का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। इस संबंध में आचार्य देव ने दुविधाहीन भाव से घोषणा करते हुए कहा, "कोई हिन्दू कभी भी दूसरे हिन्दू के सामने अस्पृश्य नहीं हो सकता, दुराचारी नहीं हो सकता। शास्त्र प्रणेता आर्य ऋषियों ने भी कदाचार को कभी प्रश्रय नहीं दिया; यह उनके आचरण से ही स्पष्ट होता है। मध्ययुग के धर्म-विप्लव, समाज-विप्लव और राष्ट्र-विप्लव के फलस्वरूप हिन्दू लोकाचार, देशाचार, स्त्री आचार के गोरखधन्धे में फंसकर शास्त्र सदाचार भूल गया। आत्मविस्मृत हिन्दू जनसाधारण इस कुसंस्कार में जकड़ा हुआ है। हिन्दू समाज के इस अनाचार और अस्पृश्यता की इस ग्लानि को मिटा देना होगा।"

मिलन-मन्दिर के साथ ही 'रक्षीदल आन्दोलन' भी उठ खड़ा हुआ। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। रक्षीदल-गठन के उद्देश्य को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "आत्मरक्षा से उदासीन एवं क्लीव हिन्दू जनता को स्वधर्म, स्वसमाज, स्वीय मन्दिर, नारी, स्वीय संस्कृति और मर्यादा की रक्षा में उद्योगी और क्षात्रतेज से युक्त तथा वीरतापूर्ण आदर्श की साधना का व्रती बनाना ही हिन्दू रक्षीदल का उद्देश्य है।

उन्होंने हिन्दू जाति की शक्ति साधना की बातें बतलायी हैं। उन्होंने उदात्त स्वर से कहा है, "हिन्दुओं क्या तुम जानते हो कि तुम शक्ति के उपासक हो? शक्ति के आराधक हो? तुम्हारी वह शक्ति साधना कहाँ गयी? शिव के हाथ में त्रिशूल है, उसे देख तुम्हारे मन में क्या विचार उठते हैं? श्रीकृष्ण के हाथ में सुदर्शन चक्र है, उसे देख तुम किस भावना में डूब जाते हो? काली के हाथ में रक्ताक्त खड़ग है, दुर्गा के हाथों में दसआयुध—इन्हें देख तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है? इस महाशक्ति की साधना करके मनुष्य क्या कभी दुर्बल हो सकता है? एक बार धीर-स्थिर होकर इस पर विचार करो।"

आज के पाठक शायद रक्षी-दल की प्रयोजनीयता को सम्यक रूप से न समझ पायें। किन्तु १९३१ सन् में मुस्लिम-लीग की उग्र सांप्रदायिक नीति के फलस्वरूप बंगाल के हिन्दू अपनी धन, मान, प्राण, स्त्रियों की इज्जत की रक्षा में जिस प्रकार असहाय हो पड़े थे उस समय सबने मन ही मन अनुभव किया था ग्राम-ग्राम में रक्षकदलों की आवश्यकता को। बांगला देश के हिन्दू उस समय आतंक में दिन काट रहे थे। क्योंकि उस समय हिन्दू संगठित नहीं थे। उनके बीच एकता न थी। उन्हें

संगठित करने वाला, उनके हृदय में साहस जगा कर आत्मविश्वास भरनेवाला, अन्याय अत्याचार के विरूद्ध उठ खड़ा होनेवाला कोई न था। ऐसे चरम दुर्दिन के समय अभय वाणी सुनायी आचार्य देव ने। उन्होंने कहा, "हिन्दू आज दुर्बल, कापुरूष क्यों हैं ? धर्म को खोने, हिन्दुत्वको भूलने के कारण आज हिन्दुओं की यह दुर्दशा हुई है, अध:पतन हुआ है। जो कहते हैं धर्म ने ही हिन्दुओं को दुर्बल बनाया है; मैं कहूंगा—वे पाखण्डी हैं, आत्मप्रतारक हैं, आत्मद्रोही हैं, आत्मधातक हैं।"

उन्होंने बज्रघोष, किया था—"संकल्प और दृढ़प्रतिज्ञा में जो अविचलित हैं, सारी सिद्धियां उनकी मुट्ठी में हैं"—इस महाशक्ति की वाणी को मैं प्रत्येक हिन्दू के कानों में सुनाऊंगा, सबमें महाशक्ति का संचार करूंगा। मैं जिस हिन्दू धर्म का प्रचार करुंगा वह हिन्दूधर्म स्वयं बोलेगा। दुष्ट दुर्वृत्तों का दल हिन्दू धर्म का क्या विगाड़ सकता है ? मैं दिखला दूंगा, समझा दूंगा—हिन्दूधर्म शक्ति की साधना है, हिन्दुओं की साधना है, पौरुष की साधना है। मैं हिन्दुओं में जिस शक्ति का संचार करूंगा उसके सामने जगत की कोई भी शक्ति खड़ी न हो पायेगी।"

"मैं जो करूंगा वह मैंने संघ के जन्मदिन पर ही कहा था। यह युग महाजागरण का युग है, यहयुग महामिलन का युग है, यह युग महासमन्वय का युग है। भारतवर्ष की हिन्दू जाति फिर जागेगी, फिर शक्तिशाली होगी—केवल मेरी इस इच्छाशक्ति के द्वारा ही हिन्दू समाज की सारी दुर्बलताएं दूर हो जायेगी।"

हिन्दू जाति को संगठित करने का जो संकल्प आचार्यदेव के हृदय में जागा था उसके उद्देश्य और तात्पर्य के संबंध में संघ के सन्यासियों के साथ विचार विमर्श करने के पश्चात उसे मूर्त्त रूप देने के लिएं उन्हेंने एक व्यापक परिकल्पना ग्रहण की थी। एक विराट देश-व्यापी आन्दोलन शुरू करने के लिये अपने कार्य सूची में उहोंने कर्मक्षेत्र के रूप में गांवों को चुना था, जिनमें देश की अस्सी प्रतिशत जनता वास करती है। लाखोंलाख ग्रामवासी उपेक्षित हैं, प्रताड़ित हैं, शोषित हैं। विपत्ति के समय जिन्हें देखने वाला कोई नहीं है, सहानुभूति जताने वाला कोई नहीं है। ऐसे उपेक्षित ग्राम वासियों के बीच जाकर उन्होंने उन्हें आश्वस्त किया था। उनके हताश हृदयों में आशा भरने के लिये उनके पास महामिलन की वार्ता ले गये थे। बंगाल में सबसे अधिक अवहेलित, पिछड़े, दरिद्रता से पूर्ण जीवन यापन करते हैं सुन्दरवन अंचल के प्राणी। सुन्दरवन में शूद्र, कापालिक, ऋषि, पौण्ड्र, क्षत्रिय प्रभृति पिछड़ी हिन्दूजाति के लोगों तक आचार्यदेव ने सबसे पहले नवजागरण की वार्ता पहुंचायी। उनके लिये नवजीवन का आश्वासन ले गये। उन्हें शक्ति मंत्र से दीक्षित कर, उन्हें संघबद्ध रूप से अन्याय अत्याचार का विरोध करने के लिये, खड़े होने का साहस जुटाने के लिये, प्रत्येक ग्राम में मिलन-मन्दिर तथा रक्षावाहिनी का गठन किया।

सुन्दरवन से जिस प्रचार अभियान की शुरूआत हुई वह धीरे धीरे यशोहर, खुलना, फरीदपुर, बरिशाल जिले में फैल गयी। पौण्ड्र, क्षत्रिय, कापाली, रैदास, नमःशूद्र, आदि अनुन्नत श्रेणी के बीच प्रचार होने के कारण जनता के बीच अभूतपूर्व आन्दोलन की सृष्टि हुई। 'काण्डारी' नामक अपने बड़े से नौका में बैठकर आचार्यदेव स्वयं बंगलादेश के दुर्गम स्थानों में जा कर प्रचार करते थे। वे जहाँ भी जाते थे वहाँ शोभायात्रा, वैदिक विधि-विधान से यज्ञ, महोत्सव, सभा का आयोजन किया जाता था। इस प्रचार अभियान के दौरान वे खाना-पीना-सोना भूल कर दिन-रात काम में डूबे रहते। हजारों लोगों को दर्शन, उपदेश, आशीर्वाद देकर उपकृत करते थे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्थान पर प्रवीण और स्थानीय मुखिया, हिन्दू नेताओं के साथ चिन्तन-मनन में दिन कट जाता था। उनके इस समय के साथियों का कहना है "दिन-रात वे एक ही भाव में मत्त होकर तथा अनन्यचित्त से चल रहे थे।" आहार-निद्रादि आदि शरीर की जरुरतों के प्रति उदासीन तथा अतिरिक्त शारीरिक परिश्रम के कारण वे अस्वस्थ भी हो सकते हैं, इसकी उन्हें रत्तीभर भी परवाह न थी।

१९३४ से १९३८ के बीच आचार्यदेव ने संगठन के कार्य को बंगाल के बाद बिहार और युक्तप्रदेशों में भी फैलाया। प्रयाग के कुम्भमेले में सारे भारतवर्ष से लाखों लाख हिन्दू पूण्यार्थी, साधु-सन्यासी समवेत होते हैं। इस कुम्भमेले के अवसर पर हिन्दू जाति के गठन, हिन्दू भावधारा तथा चिन्तन के प्रचार के लिये उन्होंने सहस्त्रों प्रचार पत्रों का वितरण किया। संघ के सन्यासी प्रत्येक अखाड़े और आश्रम में जाकर वहाँ के साधु-सन्यासियों को हिन्दूमिलन-मन्दिर की स्थापना का उद्देश्य तथा हिन्दू-संगठन की आवश्यकता समझाने लगे।

जाति-गठन और मिलन मन्दिर प्रतिष्ठान के कार्य ने बांगलादेश के १४ जिलों, विशेषकर राजशाही और चट्टग्राम के लोगों में विशेष उत्साह का सृजन किया। संघ के मिलन-मन्दिर के काम में व्यस्त रहने के बीच गया के पण्डों के अत्याचार दमन तथा काशी के अन्नपूर्णा मन्दिर में हुए अनाचार-दमन का देशव्यापी विराट आन्दोलन कर हिन्दुओं के इन दो तीर्थो को उन्होंने अनाचार से मुक्त किया।

सन् १९३४ में आचार्यदेव ने कलकत्ता में एक सम्मेलन बुलाया। कुमारसिंह हॉल में समवेत सभा में हिन्दुओं के विशिष्ट नेता, नागरिक सम्मिलित हुए थे। उस सभा में संघ के सन्यासियों ने हिन्दुओं पर हुए अत्याचार के विषय में सबको बलताया। आचार्यदेव ने उन्हे सावधान करते हुए कहा कि अगर बंगाल के गांव-गांव के हिन्दुओं को संगठित न किया गया, हिन्दू-मिलन-मन्दिर के माध्यम से उन्हें एकताबद्ध न किया गया तो हिन्दुओं को बचाना असंभव है।

बंगाल के हिन्दुओं को दुर्गति से बचाने के लिये तथा उनकी आत्मरक्षा के उपाय पर विचार करने के लिये आचार्य देव ने अगस्त के महीने में एक विराट हिन्दू सम्मेलन बुलवाया। सम्मेलन का सभापतित्व डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने किया। सभा में सर मन्मथनाथ मुखर्जी, सर नीलरतन सरकार, सर यु. एन. ब्रह्मचारी, मि० बी. सी. चटर्जी, दिनेशचन्द्र सेन, रामानन्द चट्टोपाध्याय, हेमचन्द्र घोष, मृणालकान्ति घोष, हीरेन्द्रनाथ दत्त, कुमार प्रमथनाथ राय प्रभृति नेता उपस्थित थे। ग्राम-ग्राम में हिन्दुओं में आत्मरक्षा के उपायों पर विचार बिमर्श हुआ। आचार्यदेव द्वारा प्रवर्त्तित मिलन-मन्दिर और रक्षीदल के गठन के सहारे ही आत्मरक्षा की जा सकती है, इस सम्मेलन में सभीका यही मत था।

मुस्लिम लीग के मंत्रियों का शह पाकर साम्प्रदायिक मनोभाव ने इतना भयावह रुप धारण किया कि उत्तर तथा दक्षिण बंगाल के गांवों में इसकी चपेट में हिन्दू नारियों की इज्जत तो आ ही गयी, इन्होंने मन्दिरों को भी अपवित्र करने में कोई कसर न छोड़ी। पक्षपाती लीग सरकार से किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ था। आचार्यदेव द्वारा प्रवर्तित मार्ग पर उनके निर्देशानुसार ऐक्यबद्ध हुए बिना हिन्दुओं के लिए आत्मरक्षा का दूसरा कोई उपाय न था। सन् १९४० में मार्च की शिवरात्रि पर आचार्य देव के आह्वान पर कलकत्ता में एक् सम्मेलन बुलाया गया। सर मन्मथनाथ मुखर्जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। इस विराट् सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि हिन्दुओं की आत्मरक्षा के लिये रक्षीदल का गठन ही एकमात्र उपाय है। इस प्रस्ताव के पारित होते ही आचार्यदेव के निर्देश से संघ के सन्यासी और कर्मियों ने विपुल उत्साह के साथ गांव-गांव में रक्षीदल गठन का कार्यक्रम शुरू कर दि। बंगाल के सबसे अधिक उत्पीड़ित क्षेत्रों में स्वयं आचार्यदेव अपनी आश्वासन वाणी—"बंगाल के विपन्न हिन्दुओं की रक्षा की व्यवस्था करूंगा"—सुनाने के लिये प्रचार अभियान में निकल पड़े।

सन् १९४० में मई के महीने में नोआखाली से द्वितीय बार उनका प्रचार अभियान शुरू हुआ। अगस्त के मध्य तक उन्होंने नोआखाली, कुमिल्ला, चटग्राम, फरीदपुर और खुलना जिले में परिभ्रमण किया।

जिस समय आचार्यदेव द्वितीय बार प्रचार अभियान की प्रस्तुति ले रहे थे उस समय पूर्वबंगाल विशेषकर नोआखली, कुमिल्ला, चटग्राम, बरिसाल प्रभृति जिलों में सांप्रदायिक तत्व अत्यन्त सक्रिय थे। डा० श्यामाप्रसाद इसी समय दलसहित पूर्वीबंगाल गये थे। कुमिल्ला में उनपर आक्रमण किया गया तथा बरिशाल में उनका विरोध किया गया। आचार्यदेव की राह में भी बाधाओं की बहुत अधिक संभावना

थी। वे उस ओर से प्रस्तुत होकर ही यात्रा पर निकले थे। इस यात्रा के दौरान उन्होंने सुदर्शनधारी श्रीकृष्ण तथा त्रिशूलधारी शिव शंकर की दो मूत्तियां साथ में रखी थीं।

इसी बीच जुलाई के महीनें में पुरी के सेवाश्रम में, उड़ीसा के मुख्यमन्त्री विश्वनाथ दास के सभापतित्व में हिन्दू सम्मेलन हुआ था। आचार्यदेव के निर्देशानुसार अगस्त में बालीगंज में डा० श्यामाप्रसाद मुखोपाध्याय के सभापतित्व में एक विराट हिन्दू सम्मेलन का आयोजन किया गया। बंगाल के विपन्न हिन्दुओं की आत्मरक्षा के उपाय तथा आयोजनो पर विभिन्न नेताओं ने भाषण दिये। हजारों श्रोताओं में उत्साह, उत्तेजना का संचार कर सम्मेलन समाप्त हुआ। गया सेवाश्रम में बिहार के मुख्य मन्त्री अनुग्रह नारायण सिंह के सभापतित्व में सितम्बर महीने में 'बिहार हिन्दू सम्मेलन' अनुष्ठित हुआ। हिन्दू समाज एवं हिन्दूजाति की दुर्दशा और अध:पतन के मूल कारण का विवेचन कर उसके प्रतिकार के उपायों के सम्बन्ध में विवेचना कर प्रस्ताव पारित किया गया। अक्टुबर में इसी उद्देश्य से संघ नेता के निर्देशानुसार काशीधाम और प्रयाग में सम्मेलन अनुष्ठित किया गया। श्रीश्री कालीपूजा के समय बालीगंज में स्थानीय नेतृवृन्द के आह्वान पर आश्रम में एक बार फिर से एक सम्मेलन हुआ। इस पर बिहार के मानभूम जिले के हिन्दू अधिवासियों के आग्रह पर आचार्यदेव वहाँ गये। वहाँ से नवम्बर के बीचोंबीच खुलना के हिन्दू सम्मेलन में गये। फिर सिद्धपीठ से लौट कर उत्तरबंग में अपने जीवन की अन्तिम यात्रा पर निकल पड़े।

सन् १९४० के मई महीने में नोआखली से जिस द्वितीय प्रचार अभियान की शुरूआत हुई थी उस समय, यात्रा से पहले, "मैं जा रहा हूँ, बंगाल के हिन्दुओं की रक्षा की व्यवस्था करूंगा।" —यही आशासन उन्होंने दिया था। लीग शासन से अत्याचारित, उस निराशा के अन्धकार भरे दिनों में बंगाल के पीड़ित समाज को इस प्रकार की आशा से पूर्ण वाणी सुनाने कोई भी आगे बढ़कर नहीं आया था। आचार्यदेव अपने अभयमंत्र से हिन्दुओं को अभिसिंचित करने के लिये एक के बाद एक जिले का परिभ्रमण करने लगे। विभिन्न सम्मेलनों में उन्होंने जो भाषण दिया था उसका मूल स्वर था, "उठो, जागो, संघबद्ध होवो।" ५ जून को मदारीपुर में सभी श्रेणियों के हिन्दुओं के सम्मेलन में उन्होंने जो भाषण दिया था उससे ही उनके प्रचार अभियान के भाषण का मूल वक्तव्य जाना जा सकता है। उन्होंने कहा था—"बंगाल के हिन्दू आज विपन्न हैं। धर्म, राष्ट्र, समाज, सब क्षेत्रों में हिन्दू आज लांछित हैं, पीड़ित हैं। दुष्टों-दुर्वृत्तों के क्रूर हाथों से हिन्दुओं की रक्षा करने के लिये, उसे आत्मरक्षा के लिये प्रेरित तथा संघबद्ध करना होगा। दुर्बल, आत्मरक्षा में अक्षम व्यक्ति की रक्षा कोई नहीं कर सकता। राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमानों के

बीच मिलन और सहयोगिता होने पर भी हिन्दू संगठनों की प्रयोजनीयता लेशमात्र भी कम न होगी। हिन्दू संगठनों का उद्देश्य है, हिन्दू समाज का संस्कार और संघशक्ति की बृद्धि। इसमें मुसलमानों के प्रति विद्वेष या उसके विरोध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। हिन्दू आज जीवन-मरण के सन्धिस्थल पर खड़े हैं। इस संकटकाल में हिन्दुओं को न्याय और अधिकार सहित ससम्मान जीना होगा। अनाचार और अन्याय के प्रतिकार का पथ ग्रहण करना होगा। इसके लिये उपयुक्त शक्ति का संग्रह करना होगा। बंगाल के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बांगला देश में निवास करेंगे। एक संप्रदाय दूसरे को निर्मुल नहीं कर पायेगा—दोनों सम्प्रदाय के नेताओं के हृदय में यह धारणा सुस्पष्ट रूप में रहनी चाहिये।"

"हिन्दुओं को आज फिर से अपने धर्म और जातीयता को मर्म के समझना होगा। हिन्दू देवता अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हैं, अत्याचारी दुष्टों का दमन हिन्दू देवताओं की लीला है। आत्मरक्षा का संकल्प और संघशक्ति के गठन की प्रचेष्टा और दायित्व-बोध प्रत्येक हिन्दू नर-नारी के प्राणों में जाग्रत करना होगा।" (श्री श्री युगाचार्य जीवन चरित—स्वामी वेदानन्द)।

शुद्धि आन्दोलन

मिलन-मन्दिर तथा रक्षीदल गठन के साथ ही शुद्धि आंन्दोलन के विषय में आचार्यदेव का क्या मत था, यह जाने बिना आलोचना अधूरी रहेगी। भारत में हिन्दू समाज से अन्य धर्म में धर्मान्तरण बहुत दिनों से होता आ रहा है। मध्ययुग में मुस्लिमों के विजय और अंग्रेजो के भारत आगमन के बाद से धर्मान्तरण का काम व्यापकरुप से चल रहा है। इसके फलस्वरूप हिन्दुओं का एक बड़ा गुट अन्य धर्मों में परिवर्त्तित हो रहा था। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा अन्य कारणों से दूसरे धर्म में गये लोग, बाद में चाहने पर भी स्वधर्म में लौट नहीं पा रहे थे। मध्ययुग के कट्टर समाजपतियों ने धर्म को नियमों के फाँस में इस तरह जकड़ रखा था कि एक बार दूसरे धर्म को स्वीकार किए हिन्दुओं का वापिस अपने धर्म में आने का पथ ही न बचा था। अन्य किसी धर्म का व्यक्ति भी हिन्दू धर्म ग्रहण करना चाहता तो भी उसका कोई उपाय न था। हिन्दू समाज उसे ग्रहण ही नहीं करता था। उन्नीसवी शताब्दी के मध्यभाग में स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की। अहिन्दुओं को हिन्दूधर्म में लाने के लिये, धर्मच्युत हिन्दुओं को हिन्दूधर्म में वापस लाने के लिये स्वामी दयानन्द नें 'शुद्धि आन्दोंलन' का प्रारम्भ किया था।

आर्यसमाज के आन्दलोन के बावजूद भी 'शुद्धि आन्दोंलन' को व्यापक सफलता नहीं मिल रही थी।

'शुद्धि-आन्दोलन' के बिषय में आचार्यदेव बहुत सचेतन थे। उनका मत था, 'शुद्धि आन्दोंलन' बहुत ही अच्छा और अत्यावश्यक भी है। साथ ही साथ उन्होंने प्रश्न किया था—"शुद्ध हुए नर, नारियों को समाज में उचित स्थान कौन देगा?"

शुद्धि को लेकर हिन्दू समाज के संकीर्ण मनोभाव को जानने के कारण ही उन्होंने यह प्रश्न रखा था। भारत सेवाश्रम के समाज सुधार के विभिन्न कार्यों में शुद्धि भी एक है। शुद्ध व्यक्ति को समाज ग्रहण नहीं करना चाहता है। इस दृष्टि से समस्या उठ खड़ी होती है। इस वास्तविक अनुभव के कारण ही आचार्यदेव के मन में यह प्रश्न था। इसीसे हिन्दू नेताओं के साथ शुद्धि-विषयक आलोचना में उन्होंने कहा था, "घर का दरवाजा बन्द करके यदि कोई घर के अन्दर आने का आह्वान करे तो यह बुरी बात नहीं है क्या?"

शुद्धि के सम्बन्ध में उनकी अपनी दृष्टि थी। इधर या उधर दो एक लोगों की शुद्धि करने से कोई काम न बनेगा? उन्होंने शुद्धि को वृहत्तर मिलन-मन्दिर संगठन आन्दोलन के एक अंश के रूप में ग्रहण करना चाहा था। उन्होंने देखा था—एक हिन्दू जब मुसलमान बन जाता है तब सारे मुसलमान मिलकर, चन्दा देकर उसकी सहायता के लिये आगे बढ़ आते थे। इसके विपरीत एक शुद्ध हुए हिन्दू की कोई जरा भी मदद नहीं करता। पैसों की तो दूर, मुंह से सहानुभूति के दो बोल भी नहीं फूटते। तभी उन्होंने कहा था—

"केवल कहने से ही शुद्धि नहीं होती। मैं ऐसा आन्दोलन चाहता हूँ जिसमें हजार-हजार नर-नारी स्वधर्म में स्वसमाज में, पुनः प्रवेश कर आर्यधर्म और आर्य-आचरण को ग्रहण करेंगे। मैने इस उद्देश्य की पुर्त्ति के लिये मिलन-मन्दिर की कार्य पद्धति की कल्पना की है। गांव-गांव में मिलन-मन्दिर के साप्ताहिक सभाओं में हिन्दू समाज के आदर्श, हिन्दू शास्त्रों में बताए गए बिधि-बिधान, हिन्दू समाज के क्षय, उसे बचाने के विविध उपाय आदि की ओलाचना के द्वारा हिन्दू जनसाधारण के हृदय को उदार, समष्टिचेतनायुक्त, सहानुभूतिशील बनाने की चेष्टा करूँगा। तब समाज के द्वार खुल जायेंगे और तब हजारों लोगों को शुद्धि के द्वारा समाज में लौटा पाऊंगा।

शुद्धि के साथ ही धर्मान्तरण का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। तमिलनाडू के मीनाक्षीपुरम के बहुसंख्यक हरिजनों के धर्मान्तरित होने के बाद, शुद्धीकृत व्यक्तियों और हरिजनों को समाज में उचित सम्मान देने की आवश्यकता के सम्बन्ध में हिन्दू समाज की आंख खुल सकती है। भारत के हिन्दू समाज के एक विराट अंश को धर्मान्तरित करने की सुपरिकल्पित चेष्टा चल रही है—यह बात आज सर्वविदित है। केन्द्रीय

स्वराष्ट्रमन्त्रालय की खबर है, "आल-बालाम-आल इस्लामी" (विश्वमुस्लिम कांग्रेस) का टार्गेट था १९४१ सन् में पचास हजार और १९४२ में दो लाख हरिजनों को धर्मान्तरित किया जायेगा। सरकारी सूत्रों से पता चला है कि लन्दन में अवस्थित इस्लामी सांस्कृतिक केन्द्र का एक प्लान (योजना) था, आगामी दस वर्षो में भारत के मुसलिम समुदाय को पाँच करोड़ से २० करोड़ बनाने की चेष्टा की जायेगी। (संवाद सूत्र : आनन्दबाजार)।

अपने धर्म का स्वेच्छा से त्याग कर दूसरे धर्म को ग्रहण करने का अधिकार हमारे देश में सभी को है। किन्तु भारत में धर्मान्तरण के इतिहास में कितनों ने स्वेच्छया धर्म परिवर्तन किया है इसकी जानकारी क्या हमे है? भारत और भारत से बाहर तेल-समृद्ध देशों से धर्मान्तरण के लिये जिस प्रकार पैसा बहाया जा रहा है और जिस प्रकार प्रयत्न किया जा रहा है; उससे भी यदि हिन्दू समाज की नींद न खुले तो सामने भविष्य में सामूहिक संकट की संभावना है।

हमारे समाज से बाहर जाने के पथ अनेक हैं पर आने के रास्ते प्रायः बन्द हैं। शुद्धि की व्यवस्था है पर समाज क्या उन्हें सम्मान पुर्वक ग्रहण करता है? आज धर्मान्तरण के प्रश्न पर आत्मचिंन्तन का समय आया है। हरिजन हिन्दू समाज छोड़ कर दूसरे धर्म को क्यों स्वीकार कर रहे हैं? इसमें क्या हिन्दू समाज का कोई दोष नहीं है? हमारा समाज क्या उन तथाकथित अस्पृश्यों के प्रति पूर्ण उदार है? इनके प्रति क्या हिन्दू समाज का कोई दायित्व नहीं है? कोई दोष नहीं है? लम्बे समय से अवहेलित हरिजनों को धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में यथोचित मान देने से न केवल हरिजनों का धर्मान्तरण बन्द होगा बल्कि जो चले गये हैं उनको लौटा लाना भी संभव हो पायेगा।

आचार्यदेव ने धर्म के सार्वजनीन आदर्शों की भित्ति पर अनेक प्रकार के सार्वजनीन मिलन की व्यवस्था कर सबको समान धार्मिक और सामाजिक अधिकार देने की बात कही थी। इसी उद्देश्य से मिलन-मन्दिर की स्थापना की गयी। हिन्दू समाज की रक्षा के लिये, धर्मान्तरण को रोकने के लिये, शुद्धि आन्दोलन को व्यापक करने के लिये, आचार्यदेव द्वारा प्रवर्त्तित हिन्दु-मिलन-मन्दिर के कार्यक्रम को हिन्दू समाज को ग्रहण करना ही होगा।

आचार्य देव के धर्म सिद्धान्त

जन साधारण के लिये आचार्यदेव का परिचय कर्मयोगी के रूप में ही है। उनकी कठोर साधना, उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व, उनके द्वारा प्रवर्त्तित धर्मचक्र आदि का

जितना प्रचार जनसाधारण के बीच होना चाहिये था, नहीं हुआ। उनके कर्मजीवन के ये विशेष पक्ष—कर्मयोग से ज्ञानयोग की अबाध यात्रा, लोकहितकारी कार्यों के पीछे ज्ञान का अवदान, इनके विषय में जनसाधारण अधिक नहीं जानते।

जब वे स्थूल देह में विद्यमान थे उस समय उन्होंने जिस विराट कर्मयज्ञ का आयोजन किया था, जनसाधारण उससे भलीभांति परिचित है। संघ की जनसेवा, उसका धर्मप्रचार, तीर्थ संस्कार, शिक्षाविस्तार, विशेष कर धर्म के आधार पर राष्ट्र निर्माण के उद्देश्य से हिन्दू-समाज-समन्वय आन्दोंलन ने तब देश में जिस आलोड़न की सृष्टि की थी उसे देखकर सभी विस्मय से अभिभूत हो उठे थे। किन्तु इसके पीछे जो विराट आध्यात्मिक व्यक्तित्व सक्रिय था, उस स्वरूप की उपलब्धि सब ठीक से न कर पाये थे।

इतने बड़े महाशक्ति पूंज योगी की योगसाधना और असीम योगशक्ति के स्वरूप का उद्घाटन करने, उस शक्ति का सम्यक परिचय प्रस्तुत करने की शक्ति मुझमें नहीं है। उस परिचय को तो केवल उन्हीं की कृपादृष्टि प्राप्त उनकी संघ सन्तान ही प्रस्तुत कर सकती है। फिर भी उनकी जीवनलीला को शुरू से लेकर अन्त तक अगर देखें तो पायेंगे कि उनके जीवन का प्रत्येक कर्मकाण्ड ही एक पूर्वचिन्तित, पूर्वपरिकल्पित, निर्बाध कर्मप्रवाह का अंश मात्र है। आचार्यदेव का कर्मयज्ञ और अध्यात्म जीवन निर्बाध है। उनके जीवन के प्रत्येक कर्म को अलग करके देखना गलत है। एक अखण्ड सत्ता के ही दो पक्ष हैं—धर्म और कर्म।

एक महान उद्देश्य को सामने रखकर ही उन्होंने धर्मचक्र और कर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया था। इसके पीछे है एक महासाधक की महासाधना। उनके साधनोपलब्ध ज्ञान ने ही मनुष्य को एक नूतन पथ का सन्धान मिला। "धर्म ही कर्म है एवं कर्म ही धर्म है", इस तत्व को वे अपने जीवन में उताड़ कर लोगों में तीव्र कर्मोन्माद की सृष्टि कर गये। (युगधर्म—स्बामी वेदानन्द)।

आचार्य देव की आध्यात्मिक उपलब्धि के स्वरूप तथा मानव कल्याण के लिये उस आध्यात्मिक शक्ति के व्यावहारिक प्रयोग को समझने के लिये विशेष रूप से 'संघवाणी' का अध्ययन करना होगा। आचार्य देव की साधना की उपलब्धि एवं महाज्ञान का वाणीरूप है—'संघवाणी'। एक विशेष क्षण के, एक विशेष उपलब्धि को 'संघवाणी' में वाणी रूप में प्रकाशित किया गया है। एक मृतकल्प, आत्मविस्मृत जाति के लिये संघवाणी संजीवनी बूटी के समान है। इस महामंन्त्र का जप करते-करते, उसके अन्तर्निहित तात्पर्य की उपलब्धि करने पर ही जाति एक दिन मोह निद्रा से जाग उठेगी। केवल पन्द्रह सत्यान्वेषी प्रश्न एवं उत्तरों में ही आचार्यदेव

ने अपने समग्र सत्यानुभव का फल हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। उन्होंने अपनी उपलब्धि के महासागर का मंथन कर जिस अमृत तत्व को प्राप्त किया है उसे उन्होंने जन-जन तक पहुँचा दिया है।

संघवाणी के पन्द्रह प्रश्नों के जो प्रश्नकर्त्ता हैं वे ही उत्तरदाता भी है। लोकशिक्षा और लोककल्याण के लिये दोनों भूमिकायें ही आचार्यदेव ने स्वयं ग्रहण की है।

प्रथम दस प्रश्न एवं उत्तर सुत्रों के रुप में कहे गये हैं। अन्तिम पाँच प्रश्न और उत्तर कुछ विस्तार से व्याख्या करते हुए प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम दस प्रश्नों से साधकों के सामने जो समस्याएं उठ सकती है अन्तित पाँच प्रश्नों में उसी का विश्लेषण कर, समाधान करके सठीक पथ का निर्देश दिया गया है।

लक्ष्य क्या है? स्वामी प्रणवानन्द का ऋषि वाक्य है—"महामुक्ति, आत्मतत्व की उपलब्धि ही सर्वमानव के लिये परम लक्ष्य है। मुक्ति के स्वरूप की व्याख्या चाहे किसी भी रूप में की जाए—स्वर्ग, अपवर्ग, वेहिश्त, हेवन, वैकुण्ठ, कैलाश, शिवलोक, ब्रह्मलोक, ब्रह्मनिर्वाण, शून्यनिर्वाण—सब संप्रदाय ही अन्त में एक ऐसे शाश्वत भूमि पर अधिष्ठित होना चाहते हैं जहाँ से उन्हें इस जन्म-मरण के बन्धनों से छुटकारा मिल सके। मुक्ति को लेकर चाहे कितनी ही धारणाएं क्यों न हो पर एक बात तो निर्विवाद रूप से प्रमाणित है कि मुक्ति का परमानन्द सब को ही काम्य है; सभी उसे पाना चाहते हैं। आत्मतत्वोपलब्धि और महामुक्ति समानार्थी है। आत्मा का स्वरूप उपलब्ध कर लेने पर ही तो महामुक्ति की प्राप्ति होती है। फिर जो इस दर्शन को नहीं मानते उनके लिये भी आत्मतत्वोपलब्धि का यह सन्देश निरर्थक नहीं है। क्योंकि अपने ही संबंध में अपना विरोध किसी का है क्या? अपनी सत्ता में निहित जो अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रतिभा और दीप्ति सुशुप्तावस्था में है, उसका उद्‌बोधन, प्रकाश और विकास कौन नहीं चाहता? आत्मानुशीलन और आत्मविकास के लिये निरन्तर साधना, किस धर्म, किस मत या पथ में नहीं है?

धर्म क्या है? स्वामी प्रणवानन्द का उत्तर है—त्याग, संयम, सत्य, ब्रह्मचर्य ही विश्वजनीन नित्य धर्म है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि धर्म की यह परिभाषा समस्त तर्कों से परे है। धर्म के बाह्य आवरण को या बाहरी परत को छोड़ दें तो सार तत्त्व जो बचता है वह यही त्याग, संयम, सत्य और ब्रह्मचर्य है। जिस प्रकार नौका लंगर डालने के बाद अपनी जगह से एक इंच भी नहीं हिलती, चाहे कितनी ही जोर जबर्दस्ती क्यों न की जाये। उसी प्रकार त्याग, संयम, सत्य, ब्रह्मचर्य के बिना, कितना ही तर्क-वितर्क, शास्त्रार्थ क्यों न हो, कर्मकाण्ड का बाह्याडम्बर क्यों न हों,

धर्मानुभूति या ईश्वरानुभूति के मार्ग में एक पग भी आगे बढ़ना असम्भव है। त्याग, सत्य, ब्रह्मचर्य, संयम की निष्ठा, धर्मीय साधना की शून्यता को पूरी करेगी तथा धर्मजगत में एक निःशब्द क्रान्ति लाएगी। जिस प्रकार वर्षा की अजस्र धारा मृत लता गुल्मों को संजीवन प्रदान कर उन्हें हरा-भरा कर देती है, उसी प्रकार त्याग, सत्य, ब्रह्मचर्य, संयम की साधना, सब स्तरों के तथा सब संप्रदायों के धर्म मानस के अन्दर प्राणचेतना का संचार करती है और इसी भूमि पर धार्मिक मतभेदों के अवसान के लिये उपयुक्त क्षेत्र बन सकता है। कारण, एक धर्म का दूसरे धर्म से विरोध या द्वन्द्व बाह्य आवरण-गत है। धर्म के सारतत्व का आस्वादन कर लेने के बाद खोखले आवरण को लेकर कौन महाभारत मचाना चाहेगा ?

स्वामी प्रणवानन्द जी ने 'आत्मविस्मृति' को महामृत्यु कहा है। जड़ देह पिण्ड से प्राणतत्व के निकल जाने का नाम 'मृत्यु' है। किन्तु जब आत्मविवेक न रहे तो वह 'महामृत्यु' है। जड़ देह की मृत्यु जीवन में एक बार ही होती है किन्तु आत्मविवेक की मृत्यु जीवन के प्रत्येक मुहूर्त्त को वेदनादायक बना देती है। "मैं ईश्वर की सृष्टि का श्रेष्ठ जीव हूँ" अथवा "मैं चैतन्यमय परमात्मा का ही अंश हूँ। अतः मेरा स्वरूप, स्वभाव, शक्ति, महिमा दिव्य है, ईश्वरीय है"—यह स्मृति, यह बोध, यह अनुभूति, भूल कर, पशु के समान आहार, निद्रा, भय, मैथुन को लेकर जीवन यापन करना ही महामृत्यु है। और यह स्मृति, यह अनुभूति, जब परिपूर्ण मात्रा में जाग्रत और जीवन्त रहती है तथा मनुष्य ईश्वरोन्मुख चिन्ता, भावना, कर्म, आचरणादि का पालन करते हुए सुन्दर, सुश्रृंखल पवित्र और दिव्य जीवन यापन करता है तब ही उसे महाजीवन का परम प्रसाद उपलब्ध होता है। इसी कारण आत्मबोध, आत्मस्मृति और आत्मानुभूति को ही प्रकृत जीवन कहा गया है। कस्तुरी मृग यह नहीं जानता कि जिस गंध से मत्त हो कर उसे वह ढूंढता फिरता है वह कहीं बाहर नहीं उसी की नाभि में स्थित कस्तूरी से आ रही है। मनुष्य भी नहीं जानता कि जिस आनन्द की उपलब्धि के लिये वह बाह्य विषयवस्तुओं के पीछे पागल की तरह दौड़ा फिरता है वह आनन्द किसी बाह्य वैषयिक वस्तु में नहीं है, वास्तविक आनन्द तो उसके अन्तरतम की गहराइयों में छिपा हुआ है। चित्त जब अन्तर्मुखी या ईश्वरमुखी होगा तभी उसे दिव्य आनन्द का प्रमाण मिलेगा।

आत्मविस्मृति मनुष्य को ईश्वर के सान्निध्य से दूर-बहुत दूर हटा ले जाती है और पापकर्म के पंक में डुबो देती है। दूसरी ओर आत्मस्मृति, आत्मबोध एवं आत्मानुभूति मनुष्य को ईश्वरीय भावना एवं ईश्वरीय चेतना में नित्य जगाये रख कर, धर्मनिष्ठा में लगाये रख, ईश्वर के निकट पहुँचा देती है। चाहे हिन्दू हो या अहिन्दू—प्रत्येक धार्मिक दर्शन का प्रायः यही तो सार है—हो सकता है विचारों में उन्नीस-बीस का अन्तर हो।

"महापुण्य क्या है? महापाप क्या है?" आचार्यदेव का सिद्धान्त है—वीरत्व, पुरूषत्व, मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व ही महापुण्य है। और दुर्बलता, भीरूता, कापुरूषता, स्वार्थपरता, संकीर्णता ही महापाप है। पाप और पूण्य—सब धर्म मतों में ही स्वीकृत है। स्वधर्म में निष्ठा रखकर ईश्वर की आराधना के संग-संग सर्वदा नाना सत् कर्मों में लगा रहना ही पूण्य है। किन्तु वीरत्व, पुरूषत्व, मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व को महापुण्य कहा गया है और दुर्बलता भीरूता, कापुरूषता, संकीर्णता, और स्वार्थपरता को महापाप कहा गया है। कारण चोरी, डकैती, अनाचार, इन्द्रियासक्ति, व्यभिचारादि पाप ही तो हैं। किन्तु ये सब अपप्रवृत्तियां चित्त की दुर्बलता से ही उत्पन्न होती हैं। भीरूता और कापुरुषता के वश में होकर मनुष्य इन सब प्रलोभनों से संग्राम में पराजित होता है तथा पापकर्मो में प्रवृत्त होता है। संकीर्णता तथा स्वार्थपरता के वश में होकर ऐसा कोई कर्म नहीं जो मनुष्य नहीं करता हो। सब पापों का मूल है दुर्बलतादि दुर्गुण। इसी लिए इन समस्त पापों के विरूद्ध निरन्तर संघर्ष कर आत्मजयी होना होता है। इसी कारण आवश्यकता है अन्तर्निहित वीरत्व और पौरूष के महाजागरण का। पशुभाव से छुटकारा पाने के लिए मनुष्यत्वबोध का अनुशीलन अनिवार्य है। और इसके साथ ही चाहिये चित्त में मुक्ति की इच्छा को निरन्तर जगाये रखना। वीरत्व और पुरुषत्व, पाप और पापी के विरुद्ध संघर्ष में ब्रह्मास्त्ररूप है। मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व, निरन्तर धर्मनिष्ठा, ईश्वरानुराग, और सतकार्य मनुष्य को प्रेरणा देती है और उसे पूण्यमय जीवन में लगाये रखती है। वीर्यवान और पौरूष से दीप्त साधक, मनुष्यत्व की महिमा को जीवन में स्थान देकर अन्त में अमित पुण्यप्रभाव से देवत्व की भूमि पर पहुँच सकता है। मनुष्य में ही स्वर्ग-नरक है, मनुष्य में ही सुर-असुर। पाप में नरक है और पूण्य में स्वर्ग है। पुण्यकर्मा मनुष्य ही देवता हैं और पापाचारी ही असुर हैं। अतः पाप और पूण्य के उत्स को समझना होगा। मनुष्य जीवन को चरम लक्ष्य तक पहुंचाने में जो सहायक है वही महापुण्य है और जो उसे लक्ष्य से हटाता है, मनुष्य के इहकाल और परकाल के सर्वनाश का कारण बनता है, वही महापाप है। युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द ने पाप-पुण्य के सम्बन्ध में हमारी प्रचलित धारणा को पूर्णता और मजबूती देने के लिए ही कहा था—वीरत्व, पुरूषत्व, मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व ही महापुण्य हैं और दुर्बलता, भीरूता, कापुरूषता संकीर्णता तथा स्वार्थपरता ही महापाप है।

स्वामी प्रणवानन्द के धर्मसिद्धान्तों में धैर्य, स्थिरता और सहिष्णुता महाशक्ति है। शरीर की शक्ति भी शक्ति है। वह शक्ति भी आवश्यक है। किन्तु शारीरिक शक्ति तो पशु में भी विद्यमान रहती है। एक हाथी, बाघ या सिंह में मनुष्य से कई गुणा अधिक शक्ति है और उनमें असाधारण साहस भी है। किन्तु क्या मनुष्य केवल

अपनी शारीरिक शक्ति पर ही गर्व करेगा? मनुष्य के भीतर नैतिक और आत्मिक शक्ति का जागरण भी होना चाहिए। इस लक्ष्य साधन में बाधा भीतर भी है और बाहर भी। सुख-दुःख, अच्छा-बुरा, शीत-उष्ण, पाप-पूण्य, जय-पराजय आदि में द्वन्द्व चलता है। इन समस्त बाधाओं से संघर्ष करके ही मनुष्य को आत्मविकास की साधना करनी पड़ती है। इन दुर्दम प्रतिकूलताओं से निरंन्तर संग्राम करके भी जो हार न माने, टिका रहे, वही वीर है। उसी में धैर्य, सहिष्णुता और स्थैर्य है। सामान्य घात-प्रतिघात से घबरा कर संग्रामक्षेत्र से जो पलायन करते हैं वही भीरू, कापुरूष और क्लीव हैं। वह क्या कभी भी संघर्ष में विजय पा सकता है? नहीं, कदापि नहीं।

प्रतिकूल स्थितियों के आघात को सहना ही पड़ता है। आघातों पर आघात सहकर भी स्थिर, अविचल रहकर, सारी शक्तियों का प्रयोग कर, पाप शक्ति के विरूद्ध प्रत्याघात करना ही पड़ता है। यही जीवन-संग्राम है। इस जीवन-संग्राम में शक्तिप्रदान करता है—धैर्य, स्थैर्य और सहिष्णुता। इसी कारण धैर्य, स्थैर्य, सहिष्णुता ही महाशक्ति हैं।

जीवन की लक्ष्य-साधना में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और आत्ममर्यादा ही महासम्बल है। स्वामी प्रणवानन्द के ये सिद्धान्त भी सार्वदेशिक और सार्वभौमिक हैं। मैं अकर्मण्य या निकम्मा नहीं हूँ; मै असाध्य को साध्य करने में समर्थ हूँ; मेरे अन्दर अमित तेज और वीर्य विद्यमान है;—इस प्रतीति का नाम ही आत्मविश्वास है। दूसरे किसी के सहारे न रहना, अपनी शक्ति पर विश्वास रखकर अपने आप उठने की शक्ति, अपने आत्मविश्वास के सहारे खड़ा होना ही आत्मनिर्भरता है। अंग्रेजी में एक कहावत है—Self help is the best help—अपनी चेष्टा न रहने पर कोई किसी को क्या सहारा दे सकता है? अपनी शक्ति के ऊपर विश्वास, श्रद्धा और मर्यादा बोध का ही नाम आत्ममर्यादा है—अंग्रेजी में जिसे Self-dignity कहते हैं। जीवन में प्रलोभनों तथा पतन से यह आत्ममर्यादाबोध ही बचाता है। आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्ममर्यादा, आत्मसम्बल से जो पूर्ण हैं वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता पाने के अधिकारी होते हैं।

युगधर्म-प्रवक्ता आचार्य ने आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, जड़ता, और इन्द्रियों को महाशत्रु कहा है; और उद्यम, उत्साह, तथा अध्यवसाय को परम मित्र कहा है। यह शत्रु और मित्र की नई परिभाषा है। व्यावहारिक क्षेत्र में घर और बाहर मनुष्य के अनेक शत्रु और मित्र हैं। जो हमारे विरोधी हैं वे हमारे शत्रु तथा जो हमारे अनुकूल हैं वे हमारे मित्र हैं। किन्तु जीवन में सफलता पाने में सबसे बड़े अवरोधक हैं—आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, जड़ता और इन्द्रियां। इसी कारण ये महाशत्रु हैं। ये साधारण शत्रु की अपेक्षा कहीं अधिक हानिकारक हैं, इसी कारण इन्हें महाशत्रु कहा गया है। आलस्यादि

तमोगुण मनुष्य को अकर्मण्य बना कर जड़ पत्थर जैसा बना देता है तथा इन्द्रियां उसे चारित्रिक अधोपतन की ओर धकेल देती हैं। किन्तु विशुद्ध रजोगुण से दिप्त उद्यम, उत्साह और अध्यवसाय, इस अपक्षय से मुक्ति दिला कर मनुष्य को अपने अभीष्ट साधन में तत्पर और कर्म में उद्दीप्त कर देता है। उसमें असीम, या कभी न समाप्त होनेवाली प्राणशक्ति, जगाता है। गंभीर से गंभीर निराशा के क्षणों में भी आशा का संचार करता है। क्षणिक पराजय से फिर से संघर्ष करने की प्रेरणा देकर जय पाने की कामना जगाता है तथा वह फिर से जीवन संग्राम में जूझने के लिये तैयार हो जाता है। इसी कारण ये परम मित्र हैं। यदि देखो कि तुम्हारे चारों ओर तुम्हारा कहीं कोई सहायक नही है तो निराश मत हो भीत और मृतप्राण न हो, उद्यम, अध्यवसाय और उत्साह से अपने सामने की स्थिति का सामना करो। विजय अवश्यम्भावी है। ('आचार्य स्वामी प्रणवानन्द व श्री श्री प्रणव मठ'—स्वामी निर्मलानन्द)।

इसके बाद गयारह, बारह, तेरह, चौदह और पन्द्रहवां प्रश्न और उत्तर है। यथाः—

प्रश्न— किस उपाय से आत्मस्मृति को जागरूक रखा जा सकता है?

उत्तर— प्रतिनियत आत्मचिन्ता, आत्मविचारणा और आत्मानुशीलन द्वारा।

प्रश्न— इन्द्रियों के उत्तेजना और रिपु के उत्पीड़न से आत्मरक्षा का क्या उपाय है?

उत्तर— मृत्यु की चिन्ता, देह की नश्वरता, जगत की अवास्तविकता का निरंतर चिन्तन करना।

प्रश्न— किन विषयों के कारण मनुष्य के अन्दर कामना-वासना का उदय होता है?

उत्तर— स्नेह, माया, ममता, प्यार के कारण।

प्रश्न— मनुष्य का मन कमजोर क्यों हो जाता हैं?

उत्तर— भोग विलास की आकांक्षा से, इन्द्रिय-सुख की इच्छा से, विवेक, विचार, वैराग्य के अभाव से।

प्रश्न— मन को सबल और सतेज करने के क्या उपाय है?

उत्तर— प्रति नियत विवेक बुद्धि को हृदय में जगाये रखकर। व्यास वशिष्ठ, बाल्मीकि, शुक, समीक, शंकराचार्य, जनक, युधिष्ठिर, राम, कृष्ण, भीष्म, धनंजय, एकलव्य, नचिकेता, शेतकेतु, शिति, दधीचि, दिलीप, कर्ण, जीमूतवाहन, हरिशचन्द्र आदि के वंशधर हैं हम। उन्हीं का पवित्र रक्त (लहु) हमारी धमनियों में बह रहा है—इस तरह के चिन्तन के द्वारा आत्मशक्ति पर विश्वास दृढ़ किया जा सकता है।

कुछ शब्द, कुछ बातें ऐसी होती है जिन्हें सुनने या पढ़ने से ही लगता है सारा देह एक अभूतपूर्व अनुभूति से भर उठा है। मानों वे शब्द एक नये पथ का इंगित, एक

नव उद्दीपना लेकर आया हो। जब सुनता हूँ, "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वराण् निबोधत", "नायमात्मा बलहीनेन लभ्य", "क्लैव्यम् मास्म गमः पार्थ", "चरैवेति चरैवेति" —प्रत्येक शब्द हमारी सुप्त सत्ता को झकझोर जाता है। इसी प्रकार संघवाणी भी हमें जड़ता से, आलस्य से, दुर्बलता से, भीरूता से, दूर करती है। हमारी सोयी हुई चेतना को जगाती है। हमें अनुप्राणित करती है, उद्दीप्त करती है कि हम जीवन के चरम लक्ष्य को पाने के लिये दृढ़ कदमों से आगे बढ़ चलें। संघवाणी का प्रत्येक शब्द गंभीर अर्थ से पूर्ण है। प्रत्येक शब्द सारतत्व से पूर्ण है। एक शब्द में कितनी शक्ति छिपी हो सकती है यह हमें संघवाणी पढ़ने से ही अनुभव होता है। शब्द को शब्दब्रह्म कहा गया है। यह उक्ति संघवाणी पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। आचार्यदेव के "आत्मनिष्ट महाजीवन की स्वतंन्त्र सत्यानुभूति से उत्सरित होने के कारण ही श्रीश्री संघवाणी की प्रत्येक उक्ति तेजस्विनी प्राण-चेतना से भरपूर है।" संघवाणी के लिये संघ नेता ने स्वयं कहा था, "जो वेद, पुराण, तन्त्र, उपनिषद में है उनका सार मैंने संघवाणी में दिया है।" यदि हम आचार्य की जीवनी का पुनः अवलोकन करें, तो पार्येगे कि संघवाणी का प्रत्येक मन्त्र उनके स्वयं के जीवन की सार्थकता से पूर्ण है।

संघवाणी का सार्वजनीन योगदान हमें अभिभूत करता है। आप जिस भी धर्म को मानने वाले क्यों न हों, किसी भी संप्रदाय के साथ युक्त क्यों न हों, साकार-निराकार, द्वैतवादी-अद्वैतवादी—क्यों न हों, आपके गुरू ने आपको जो भी गुरू मंन्त्र क्यों न दिया हो, संघवाणी सभी को अपने-अपने पथ पर, विश्वास पर, अविचलित भाव से स्थिर रहकर साधना के पथ पर आगे बढ़ने में सहायता प्रदान करती है। संघवाणी में एक भी ऐसा शब्द न मिलेगा जो विश्व के किसी भी धर्म का विरोध करता हो। यहीं पर आचार्यदेव की विश्वव्यापी आध्यात्मिक व्यक्तित्व की अनन्यता सिद्ध होती है।

एक लक्ष्य—नाना माध्यम

आचार्यदेव ने अपने जीवन में अनेक कार्य किये, पर एक भी काम बिना सोचे-समझे नहीं किया। जीवन के शुरू से ही उन्होंने एक लक्ष्य स्थिर किया और लक्ष्य की पूर्त्ति की ओर उनका प्रत्येक चरण बढ़ता रहा। किशोर ब्रह्मचारी विनोद ने कठोर साधना की थी। अपने परवर्ती जीवन के महाव्रत को पूर्ण करने की भूमिका के रूप में हम देखते हैं,—"उनके पहनावे में था एक सादा धोती, एक मोटी चादर—सब ऋतुओं में एक सा। उनका आहार था—भात और भात के साथ उबला आलू अथवा पानी में डाला हुआ भात। शय्या थी—एक तख्त पर एक मोटा कम्बल। साधना-गृह में थी—गुरू की मूर्त्ति, कुछेक देवताओं की छवि, कुछेक धार्मिक ग्रन्थ

और एक जप-माला।" केवल मात्र कठोर इन्द्रिय संयम और अटूट वीर्यधारण के बल पर ही वे शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को स्तर-दर-स्तर विकसित कर पाये थे। ('युगधर्म'—स्वामी वेदानन्द)।

जीवन का लक्ष्य स्थिर करने के पश्चात् उस ओर दृढ़ कदमों, अटूट संकल्पशक्ति और अखण्ड नियमों से चल कर अति अल्प समय में ही मानवजीवन के चरम लक्ष्य और साध्य को उन्होंने पा लिया था। साधना में सिद्ध होने के पश्चात् उन्होंने राष्ट्र गठन का संकल्प लिया था। उन्होंने भारत के सनातन धर्म और संस्कृति के आदर्श पर राष्ट्र का गठन करना चाहा था। उस संकल्प को साकार करने के लिये ही उन्होंने अपने हाथों से गढ़े तपस्वी-त्यागी सन्तान दल को लेकर सन्यासी-संघ की स्थापना की थी। उन्होंने स्वयं उनमें शक्ति का संचार किया था। नवप्रेरणा से प्रेरित कर उन्हें देश के कोने-कोने में महाजागरण का मन्त्र फूंकने के लिये भेज दिया था।

किसी भी जाति का मेरूदण्ड यदि सुदृढ़ आधार पर टिका हुआ नहीं रहता तो वह जाति कभी भी स्वस्थ, सबल नहीं बन सकती। राष्ट्र निर्माण के नये आदर्श के सपने को सार्थक रूप देने के लिये ही आचार्यदेव ने नैतिक आन्दोलन चलाया था। मुख्यत: युवाओं के लिये होने पर भी इस आन्दोलन को उन्होंने गृहस्थों में भी फैला दिया था। घर-घर में यदि स्वच्छ नैतिक परिवेश की सृष्टि न होगी तो नैतिक संयमहीन गृह परिवेश से त्यागी, संयमी तरूणदल का निर्माण किस प्रकार होगा? इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने गृहस्थों को त्याग, सत्य, संयम, ब्रह्मचर्य की शिक्षा के आदर्श पर जीवन यापन का उपदेश दिया था। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये उन्होंने सदलबल देश के कोने-कोने का भ्रमण किया था। जहाँ वे स्वयं न जा पाये वहाँ संघ के सन्यासियों को प्रचार-अभियान के लिये भेज दिया। पूरे देश में लाखों प्रचार-पत्रों का प्रसार किया था। उनके जीवन की अन्यतम, श्रेष्ठ कीर्ति थी हिन्दू समाज-समन्वय-आन्दोलन, मिलन मंदिर और रक्षीदल का गठन—इन सबका एक ही उद्देश्य था—राष्ट्र निर्माण।

उन्होंने चारण दल का गठन किया। संघ को चलाने के लिये यह दल अर्थ संग्रह तो करता ही था साथ ही साथ नवयुग की नवजागरण वार्ता का प्रचार भी करता था। गांव हो या शहर जहाँ भी यह चारणदल गया वहीं घर-घर में उनके युगमंत्र संघवाणी को पहुँचा आया।

साधारण दृष्टि से देखने पर यह अत्यन्त ही मामूली बात लगती है, लेकिन वहाँ भी देखा गया कि वह सब उनके मूल उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये ही था। नदी-नालों से युक्त बंगाल के प्रत्येक ग्राम में संघ के आदर्शों को पहुँचाना था। लेकिन यातायात

की असुविधा प्रचार-पथ में प्रायः अवरोधक के रूप में आ जातीथी। इस बाधा को दूर करने के लिये उन्होंने 'काण्डारी' नामक जलयान का निर्माण किया। एक वृहत्तर परिकल्पना को रूपायित करने के लिये, बंगाल के दुर्गम स्थलों तक धर्म का प्रचार करने के लिये 'काण्डारी' का विशेष योगदान है।

प्रसंगवश आचार्यदेव की अलौकिक शक्ति एवं अन्तर्यामी रूप की चर्चा भी आ जाती है। योगसिद्ध महापुरूषों में अन्तर्दृष्टि, अन्तर्शक्ति का होना स्वाभाविक है। अलौकिक शक्ति के स्वामी होने पर भी आचार्यदेव ने अपनी शक्ति का प्रयोग लोगों को चौंकाने के उद्देश्य से कभी नहीं किया। उनके अपने जीवन के घटनाक्रमों में ही हम उनकी इन शक्तियों का दर्शन पाते हैं।

पात्र भेद के अनुसार किसी-किसी पर उनकी विशेष कृपा रही है। उनकी करुणा इस रूप में दिखलायी पड़ी है कि उसे हमने अलौकिक माना है। उन्होने जिनके जन्मजन्मान्तर के पापों को अपने ऊपर ले लिया अर्थात जिन्हें शिष्य रूप में ग्रहण किया, हो सकता है किसी संकट के समय वह गुरू-कृपा से संकट-मुक्त हो गया। परन्तु, ऐसे समय में भी उन्होंने इस प्रकार के बाह्य परिस्थिति की सृष्टि की है कि वह उस व्यक्ति को अलौकिक न लग कर स्वाभाविक ही लगा था।

आचार्यदेव ने अपनी योगशक्ति का प्रयोग समष्टि के कल्याण के लिये ही किया है। किसी-किसी प्रसंग में उनकी विशिष्ट कृपा का प्रकाश भी मिलता है। अन्तर्यामीत्व अथवा अलौकिकत्व उनकी सत्ता का एक अंश मात्र है। इसे छोड़ कर आचार्यदेव के पूर्ण अखंड-रूप का प्रकाश नहीं किया जा सकता।

फिर भी उन्होंने जो भी किया एक ही उद्देश्य से—धर्म एवं आध्यात्मिकता के आधार पर व्यक्ति, समाज, और राष्ट्र का गठन। इसके लिये इन्होंने अनेक माध्यमों को अपनाया था।

प्रचार के लिये 'काण्डारी'

बंगाल नदी प्रधान देश है। वर्षा में पूर्व-बंगाल के समस्त रास्ता-घाट पानी में डूब जाते हैं। वर्ष में प्रायः पाँच महीने रास्ता-घाट जल में डूबे रहने के कारण यातायात का एकमात्र सहारा नौका होता है। पूर्वीबंगाल की रेल व्यवस्था भी अति साधारण सी थी। नदीपथ अथवा नहरों से नौकाएं एक गांव से दूसरे गांव तक आती-जाती थी। आचार्यदेव की इच्छा बंगाल के प्रत्येक गांव तक नवजागरण की बार्ता पहुंचा देनी थी। तथाकथित निम्न जाति के हिन्दू, उच्चश्रेणी के हिन्दू समाज की अवज्ञा और अवहेलना से हिन्दू समाज के मूलस्रोत से कट कर अलग हुआ जा रहा

था। जिन्हें निम्नश्रेणी का कह कर दूर हटाया जा रहा था वे अपने आपको अवहेलित अनुभव कर रहे थे। उन्हें लगता था, दुर्दिन में कोई उनके पास खड़ा होने वाला नहीं है। निम्मवर्ग की इस धारणा को दूर करने के लिये ही आचार्यदेव पैदल अथवा नौका पर उनके पास गये थे। नितान्त अपनेपन से उन्हें अपने समीप ले आये थे। जहाँ खुद अपने से न जा पाये वहां उहोंने सन्यासियों सहित प्रचार दल को भेजा था। आचार्यदेव ने अनुन्नत संप्रदायों के बीच जागरण लाना चाहा था। वे जानते थे अनुन्नत समाज के दूर हटने से हिन्दू समाज और भी कमजोर हो उठा है। अत: इन्हें संगठित करना होगा—इनके पास जाना होगा।

गांव-गांव में प्रचार कार्य के पथ में बाधक हो उठती थी परिवहन व्यवस्था। दलबद्ध रूप में अनेक माल-असबाब लेकर चलने से खर्च भी बहुत अधिक होता था। कई बार बड़ी नौका भी नहीं मिलती थी। चारों ओर से सोच-विचार कर परिवहन समस्या के समाधान, तथा प्रचार व्यवस्था को जोर-शोर से चलाने के लिये, व्यय को कम करने के लिये, आचार्यदेव ने अपनी एक नौका तैयार करवायी, जिसका नाम रखा 'काण्डारी'।

काण्डारी ६७ फीट लंबा और १५ फीट चौड़ा एक बजरा था। संभवत: १९३०-३१ सन् में यह बजरा बनाया गया था। पहले साधारण नौका के समान ही बांस का टप्पर बनाया गया। दो साल बाद लांच के समान केबिन, दरवाजे, छत आदि बनाये गये। 'काण्डारी' से पूरे पूर्वबंगाल में जाने के सिवाय कई बार आचार्यदेव बाजितपुर से कलकत्ता भी आये-गये थे। समय लगता था लगभग ९ से १०दिन। नौका पर सन्यासी, भजनमंडली, ब्रह्मचारी, कर्मीवृन्द आदि मिलाकर कम से कम १०० व्यक्ति रहते थे। 'हिन्दु-समाज-समन्वय' आन्दोलन के उपलक्ष में जब आचार्यदेव निकलते तब कम से कम २०० लोग रहते थे। तब काण्डारी के साथ-साथ और भी नौकाओं को किराये पर लिया जाता था। काण्डारी के कारण बांगलादेश के घने दुर्गम स्थलों पर स्थित आदिवासियों तक पहुंच पाना बहुत ही आसान हो गया था।

भारत सेवाश्रम संघ के प्रचार अभियान में काण्डारी का विशेष योगदान है। फरीदपुर, बरिसाल, खुलना, यशोहर, जिलों में स्थित सुदूर गांवों तक काण्डारी ने संघ की वाणी पहुँचाने में बहुत सहायता की है। इसके अतिरिक्त उपेक्षित सुन्दरवन के गांव-गांव में अपनी संघवाणी लेकर आचार्यदेव स्वयं गये थे। नदीपथ, नहर पथ, नाला पथ—कोई भी पथ क्यों न हो, आचार्यदेव कहाँ नहीं गये थे?

महाराज के साथ चलने वाले सन्यासी उन दिनों की याद करते हुए कहते—जब आचार्यदेव काण्डारी पर कलकत्ता अथवा कहीं भी प्रचार के लिये जाते थे तब नदी

के दोनों किनारों पर सन्यासी तथा कीर्तन मण्डली को उतार देते थे। ढोल-करताल बजाते-बजाते, भक्ति और देशभक्ति परक गीत गाते-गाते वे दोनों किनारों पर स्थित गांव-गांव में जाते तथा संघ एवं संघवाणी का प्रचार करते थे। दोपहर में निर्दिष्ट स्थान पर प्रचारकों के लिये नौका खड़ी होती थी। फिर संध्या के समय इसी प्रकार प्रचार करते-करते सन्यासियों का दल आगे बढ़ जाता था। इस समय ग्रामवासी अपनी हैसियत के अनुसार उन्हें अनाज, फल, सब्जियां, पैसे आदि देते थे। कभी-कभी सभा भी बुलायी जाती थी। सन्ध्या के समय नौका में आरती होती, समाचार मिलते ही गांव के पुरूष-स्त्री-बच्चे सब दौड़े चले आते, लड़कियां उलुकध्वनि से, फूल-फल-बेलपत्र का अर्घ्य देतीं। पूजा, आरती कीर्त्तन के बाद सभी उनका आशीर्वाद और प्रसाद लेकर घर वापिस लौट आते। बाजितपुर, खुलना, आशाशुनी से जब जलपथ के माध्यम से कलकत्ता जाते तब दोनों ओर के किनारों पर चर्चा होने लगती बाजितपुर के महाराज आये हैं। नदी के दोनों किनारों पर कतार दर कतार लोग स्वामीजी के दर्शन की अभिलाषा से खड़े हो जाते थे। कभी-कभी ग्रामवासियों के आग्रह पर नौका खड़ा करवा कर उन्हें आशीर्वाद देते थे। ये ग्रामवासी प्राय: ही निरक्षर, सरल प्रकृति के होते थे। इनके जीवन में किसी साधु सन्यासी से भेंट का संयोग नहीं होता। वे आचार्यदेव का दर्शन पा कर आनन्द से अभिभूत हो उठते थे। वे अवाक रह जाते थे। इतने दिनों तक किसीने इतनें अपनेपन से अपनी और उन्हें खींचा न था। इस प्रकार उनके दुख-दर्द में किसी ने उनका साथ न दिया था। इस प्रकार उन्हें छाती से न लगाया था। आज महापुरूष अपने से आकर उन्हें आशीर्वाद देंगे—इसकी तो कल्पना तक नहीं की जा सकती। करूणावतार आचार्यदेव से चलने के रास्ते पर ही सैकड़ों लोग आशीर्वाद पाते थे।

विरोधी शक्तियाँ

सब देशों में, सर्वत्र, सर्वकाल जब-जब किसी महापुरुष का उद्भव हुआ है, उन्होंने अपनी वाणी सुनायी है, उन्हें विभिन्न बाधाओं का, विघ्नों का सामना करना पड़ा है। इतिहास में इसके अनेकों उदाहरण मिलते हैं। सबसे बड़ी बाधा अपने देश के, अपने निकट के लोग ही खड़ी करते हैं। आचार्य स्वामी प्रणवानन्दजी भी इसके अपवाद न थे। उन्हें भी अनेक बाधाओं, विघ्नों, विरोधियों का सामना करना पड़ा था। सबसे बड़ी बाधा उनके अपने गांव और महकमे से ही आयी थी। उनके विरोधियों ने उनकी निन्दा के लिये संवादपत्रों में भी बहुत कुछ विरोधी तथ्य दिये। अधिकांश क्षेत्रों में ही विरोधियों ने उन्हें गलत समझा तथा बाद में गलती समझ में आने पर वे उनका साथ भी देने लगे।

गांव के लोगों की विरोधिता के पीछे एक विशेष प्रकार की मानसिकता थी। जिसे हम अपने बीच ही रोज देखते हैं। जो हमारे जैसा ही साधारण व्यक्ति है, वही अगर असाधारण हो उठे, हमारी पहुँच के बाहर हो जाये, हमसे बहुत अधिक ऊँचा हो उठे, तो सब उसे सहज भाव से स्वीकार नहीं कर पाते।

आचार्यदेव की विरोधिता के पीछे भी यही मानसिकता दिखलायी पड़ती है। छात्रजीवन का विनोद, फिर ब्रह्मचारी विनोद, नें अपने ही गांव बाजितपुर के एक तरूण को सेवा मन्त्र देकर दीक्षित किया था। इस अनुगत तरूण दल को लेकर ब्रह्मचारी विनोद जनहित के अनेक कामों में लगा रहता था। इस लोकहितकारी कार्य को गांव के लोग मुक्तभाव से सराहते थे। गांववालों ने चावलआदिकी अथवा पैसों की भिक्षा देकर समय-असमय में उनकी सहायता भी की थी। धीरे-धीरे ब्रह्मचारी विनोद आचार्य बने। वनदुर्गा के पीठस्थल पर जहां छोटे से कमरे में आश्रम था वहाँ विशाल मन्दिर बना, यात्रीनिवास बना। प्रत्येक वर्ष उत्सवों पर दूर-दूर से हजार-हजार लोग उस मेले में भाग लेते थे। देश-विदेश में उनकी ख्याति फैंलने लगी। हजारों शिष्यों ने आचार्यदेव को शिवरूप में पूजा की—विष्णु भंइया का बेटा इतना आगे बढ़ जायेगा इसकी तो स्वप्न में भी कल्पना न थी। नीच व्यक्तियों को यह सब अच्छा न लगना स्वाभाविक ही था। कुछ लोग इसे सहन नहीं कर पा रहे थे। हिन्दू शास्त्रज्ञ उनके दोष खोजने लगे। जानबुझकर उनसे झगड़ा करने लगे। तिल का ताड़ बना उनकी निन्दा की जाने लगी। गांव में साधारणतः जैसा होता है वैसा ही ये लोग करने लगे। आश्रम को बढ़ता हुआ देखकर लोगों ने सोचा इस साधु के पास बहुत पैसा है—अतः दबाव डालकर पैसा लिया जाये। वह चेष्टा व्यर्थ गयी तो उन्होंने झूठा मुकदमा चला दिया। परन्तु सब विरोधियों को मुँह की खानी पड़ी। अधिकांश विरोधियों ने अन्ततः उनका ही आश्रय लिया।

एक आदमी संघ के लोकहितकारी काम से आकृष्ट होकर, आश्रम के कर्मचारियों के साथ मिल कर सेवाकार्य तथा अर्थसंग्रह का कार्य कर रहा था। विरोधियों ने उसे अपने साथ कर लिया। उसे साथ लेकर वे आचार्य देव पर रूपये देने के लिये दबाव डालने लगे। आचार्यदेव ने कहा—किसी के व्यक्तिगत स्वार्थ को पूर्ण करने के लिये रूपये जमा नहीं किये गये हैं। यह सारा धन लोकहित के कार्य के लिये है। अतः रूपये देना संभव नहीं है। उन्होंने एक झूठा मुकदमा इन पर ठोंक दिया। महकुमाशासक शैवाल गुप्त के सामने वादी ने स्वीकार किया कि कुछ षड़यंत्रकारियों ने बदनाम करने के लिये इन्हें झूठे मुकदमें में फंसाया है। S.D.O. ने मुकदमा खारिज कर दिया। S.D.O. ने कहा कि झूठे आरोप में फंसानेंवाले आरोपियों पर संघ की ओर

से कानूनी व्यवस्था ली जाय। संघ ने कहा—वह वादी के विरूद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं करेगा।

फिर दुष्टों ने एक नया मुकदमा चलाया कि "आश्रम झाँसा देकर लोगों से चन्दा वसूलता है। उसे लोकहित में खर्च न कर व्यक्तिगत सुख सुविधा पर खर्च करता है। इस प्रकार देश और लोक की हानि कर रहा है।" अभियोगकारी S.D.O. को बाजितपुर लेकर गये। महकुमाशसक ने स्थानीय लोगों से पूछताछ की। फिर संघनेता से भेंट की। मुकदमे के फैसले में उन्होंने कहा, अभियोग मिथ्या और दुरभिसन्धिपूर्ण है।"

"The Allegation is malicious and false. The humanitarian service of Swami Pranavananda is well known in the locality. The case is summarily dismissed."

गांव के किसान ऊंची दर पर व्याज दे कर महाजनों से ऋण लेते। समय पर कर्ज न चुका पाने पर उनकी जमीन जायदाद हड़प ली जाती।

एक बार गांव के गरीब कृषक अपनी दुर्दशा की चरमावस्था पर थे। दुखियों के बन्धु स्वामीजी महाराज ने कृषकों की दीन दशा पर द्रवित हो कर उन्हें नाममात्र के सूद पर रूपये देना मंजूर किया। सूद प्रायः न ही मिलता, मूल लेकर ही महाराज संतुष्ट हो जाते। उन्हीं रूपयों से फिर आगामी वर्ष किसानों को ऋण दिया जाता। इतने दिनों तक जिन्होंने किसानों को ऊंचे दर पर कर्ज दिया तथा सूद न मिलने पर किसानों को मटियामेट कर दिया, ऐसे लोगों की आंखों में आचार्यदेव का खटकना स्वभाविक ही था। वे क्रोध में अंधे हो आश्रम के विरोध में, निन्दा में, नाना प्रकार के कुप्रचार करने लगे। कृषकों ने देखा—यह तो भारी विपत्ति आयी। उन्हें भय हुआ, इस मिथ्या प्रचार से यदि स्वामीजी महाराज डर गये, गुस्सा हो गये, तो उन्हें फिर से उन महाजनों की शरण में जाना पड़ेगा। इसी कारण कृषक खुद ही आगे बढ़ आये। उन्होंने प्रचारपत्र छपवा कर जनसाधारण के बीच वितरित करके उस मिथ्या प्रचार से सबको सावधान किया तथा षड़यंत्रकारियों के षड़यंत्र का भण्डा फोड़ दिया।

दुरात्माओं में छल का अभाव नहीं होता। छिद्रान्वेषी किसी भी घटना में सौ दोष ढूंढ़ निकालते हैं। मदारीपुर शहर में यह बात फैल गयी कि विनोद साधु ने अपनी माँ का प्रणाम स्वीकार किया है। भाईयों ने इसकी निन्दा की। शहर के कुछ लोगों ने इस बात को सच माना और वे उस पर क्रुद्ध हो उठे। घटना इस प्रकार थी—माघी पूर्णिमा के उत्सव पर बाजितपुर में हजारों लोगों की उपस्थिति में विराट यज्ञ होता था। आनेवाले भक्तगण केला, संतरा, बेल आदि फलों का यज्ञ में आहुति देते थे। इसी प्रकार के एक यज्ञ में एकबार संघनेता की अति वृद्धा माँ भी लाठी टेकती

आयी। यज्ञकुंड के पास डाब रख, यज्ञकुंड को प्रणाम कर वे उसी तरह लाठी टेकती हुई चली गयीं। यज्ञवेदी के पास आचार्यदेव बैठे थे। यज्ञस्थल पर माँ का आना, यज्ञवेदी पर प्रणाम करना, सबने ही देखा। विरोधियों ने इस घटना को विकृत रुप में उछालना शुरू कर दिया—साधु ने माँ का प्रणाम स्वीकार किया। आचार्य देव के शिष्य रमेश दास वहीं उपस्थित थे। उनके द्वारा लिखित 'बाजितपुर में श्रीश्री आचार्य देव की लीला' में उक्त घटना का उल्लेख है। ('कंठे-कंठे करुणाकथा'-खण्ड ४)।

संघ द्वारा आयोजित एक और अनुष्ठान जिसकी खूब निन्दा की गयी थी, पत्र पत्रिकाओं में उसकी खूब आलोचना हुई थी वह है—गुरूपूजा। संघ सन्यासियों ने जब आचार्यदेव को साक्षात शिव रूप मान उनकी पूजा अर्चना करनी शुरू कर दी तब विरोधी पक्ष ने उसे खूब उछाला, खूब निन्दा की। दैनिक पत्रों में उनपर लेख लिख कर उनका कुप्रचार किया जाने लगा। इस गुरूपूजा के संबंध में एकबार स्वामीजी ने खुलना के विशिष्ट व्यक्तियों के सामने कहा था—"यह पूजा कोई व्यक्ति पूजा नहीं है। यह पूजा तो आदर्श की पूजा है। समाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन को शान्तिमय बनाने के लिये इस प्रकार की पूजा का घर-घर में प्रचार होना अनिवार्य है।"

एकबार आचार्यदेव ने राजशाही में स्वामी विश्वानन्दजी (तव छात्र थे) से कहा था—"यदि कोई प्रश्न करे कि गुरुपूजा की क्या सार्थकता हैं? तो कहना, क्या हम स्वामी प्रणवानन्दजी के शरीर (आपना देह दिखा कर) की पूजा करते हैं? उनकी देह के अन्दर जो अनन्त शक्ति है, हम उसकी पूजा करते है।" हिन्दू शक्ति के पुजारी हैं—इसके बाद भी क्या और कुछ कहने को रह जाता है?

पुण्य भारतभूमि पर गुरूपूजा एक अत्यन्त सुप्राचीन प्रथा है। हम गुरू की पूजा करते समय कहते हैं—

गुरूर्ब्रह्मा, गुरूर्विष्णो गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूरेव साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरूवे नमः।

गुरू की पूजा अर्चना पूर्णतः भक्त का व्यक्तिगत भाव है।

पृथ्वी के श्रेष्ठ महापुरुषों के जीवन पथ पर नाना बाधायें, विघ्न आये हैं। किन्तु सब प्रतिरोध, सब विरोधों को लांघ कर सत्य अपनी महिमा पर प्रतिष्ठित हुआ है।

आचार्यदेव की राह पर आयी कोई भी बाधा, उन्हें उनके संकल्प, आदर्श से डिगा नही पायी।

भिक्षा की झोली

भारत सेवाश्रम संघ आज एक विराट संस्था है। बाजितपुर ग्राम की बूढ़ी ठाकुरानी के चौरे के पास एक टुकड़े जमीन पर एक छोटी सी कोठरी से जिस सेवाश्रम की शुरूआत हुई थी उस सेवाश्रम का कर्मक्षेत्र आज भारत की सीमा को पार कर सुदूर विदेशों तक फैल गया है। इस संस्था को बहुमुखी कार्य करने के लिये अर्थ का आज अभाव नहीं है। सहस्रों अनुरागी भक्त, समाज के दर्दी मनुष्य आज स्वेच्छया जनहितकारी कार्यों के लिये आगे आते हैं।

आश्रम की शुरूआत में आश्रम का काम भिक्षा से संग्रहित चावल और दाल से चलता था; चंदे के सामान्य धन से चलता था। तब स्वामीजी महाराज स्वयं द्वार-द्वार पर भिक्षायापन कर अर्थ संग्रह करते थे। चारण दल भक्तिपरक अथवा देश गौरव के गीत गाते हुए चलते थे तथा भिक्षा का संग्रह करते थे। आज जो आश्रम के परिचालक हैं उन्होंने भी उन दिनों चारण दल में सम्मिलित होकर भारतवर्ष के विभिन्न स्थलों का भ्रमण किया था।

ऐसे दिन भी गये हैं जब विज्ञानानन्दजी (संघ के भूतपूर्व सह सभापति) चार आने चन्दा के लिये बागबाजार से भवानीपुर तक पैदल गये थे।

किसी भी शहर या ग्राम में उत्सव होने पर आचार्यदेव स्वयं उपस्थित होते थे। संघ के सन्यासियों को लेकर प्रत्येक घर में जाते तथा कीर्तन करते-करते सबको उत्सव में आने का तथा स्वामीजी महाराज के दर्शन का आमंत्रण करते। प्रत्येक गृहस्थ अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार चावल, पैसा आदि की सहायता करके उत्सव को सफल बनाते। वे अपने को उस उत्सव का एक हिस्सेदार मानते। उन्हें लगता, यह उनका ही उत्सव है। जब हजारों खर्च करके उत्सव का आयोजन करने की क्षमता संघ की हो गई थी उस समय भी द्वार-द्वार जाकर भिक्षावृत्ति नहीं छूटी थी। प्रत्येक घर में जाकर चंदा इकठ्ठा करना, कुछ चावल का संग्रह करना, साथ में स्वामीजी महाराज का फोटो लेकर एक संघवाणी देकर आना—इनका मूल्य धन से नहीं आंका जा सकता। एक धनी भक्त के कुछेक हजार रूपयों के दान से उत्सव का आयोजन, और हजारों घरों में संघ का उद्देश्य पहुंचा कर उत्सव का आयोजन करने में बहुत अन्तर है।

नये सेवक और ब्रह्मचारी को चारणदल के साथ जाना पड़ता था। लाज-शर्म छोड़ रास्तों पर भजन करना पड़ता था, भिक्षा की झोली उठा कर, धूप वर्षा की परवाह किये बिना चारणदल के साथ घूमना पड़ता था। जो सेवा, त्याग, वैराग्य का रास्ता चुनते हैं उनकी शिक्षा का प्रथम पाठ यही होता है।

भारत सेवाश्रम संघ जैसे ख्यातिप्राप्त सेवा प्रतिष्ठान के सन्यासी, ब्रह्मचारी रास्ते में घूम-घूम कर भिक्षा मांगे, यह कइयों को अच्छा नहीं लगता। आचार्यदेव के सामने भी यह प्रश्न रखा गया था। तब भी उन्होंने केवल धनिक वर्गों के दान का आश्रय ले कर चारणदल को बंद नहीं किया था। चारणदल को बंद कर देने से भारत सेवाश्रम संघ साधारण मनुष्य के मन से दूर हो जाता। संघ जो साधारण जन के हृदय के इतना समीप है, इसका कारण संघ संतानों द्वारा दरवाजे-दरवाजे पर भिक्षा-यापन द्वारा दो-एक रूपयों का संग्रह तथा सामान्य जन से सम्पर्क स्थापित करना है। आम जनता को लगता है भारत सेवाश्रम संघ उनका अपना ही प्रतिष्ठान है।

चारणदल का मुख्य उद्देश्य ही था संघ के जन हितकारी कार्यों के लिये अर्थसंग्रह करना तथा संघ नेता की वाणी घर-घर में पहुंचा देना। इसके सिवाय भी एक और उद्देश्य था—भिक्षा यापन, नव ब्रह्मचारी, नव सन्यासियों की शिक्षा का प्रारंभ होता था। भिक्षा यापन द्वारा मान अभिमान के त्याग की शिक्षा इन्हें मिलती थी। प्राचीन युग में, ब्रह्मचर्याश्रम मे, गुरूकुल में रहकर विद्यार्थी भिक्षा-यापन करते थे। आधुनिक युग में स्कूल, कॉलेज से पढ़ कर निकले हुए विद्यार्थियों को कंधे पर झोली लटका कर द्वार-द्वार से भिक्षा मांगने में लज्जा तो आयेगी ही। इस 'लज्जा' या 'मैं' के भाव को चूर-चूर करना ही पड़ेगा। संघ सन्तान के लिये लज्जा, घृणा, भय का कोई स्थान नहीं है। मैं संघ का हूँ और संघ के लिये सब काम ही गुरूत्वपूर्ण हैं, गंभीर है। मैं संघ-शरीर का अंशमात्र हूँ—यही शिक्षा आचार्य देव सबसे पहले दिया करते थे। इसी कारण उन्हें चारणदल में भेजते थे।

चारणदल में एक सन्यासी के नेतृत्व में प्राय: दस-बारह ब्रह्मचारी रहते थे। सबको कठोर विधि नियमों का पालन करना पड़ता था। सब में एक ही भाव रहता था कि वे सब एक ही पथ के पथिक है। भोर पाँच बजे पूजा-आरती होती थी। फिर कुछ देर ध्यान-जप; कोई-कोई व्यायाम भी करते थे। फिर नाशता—लम्बी परिक्रमा करनी होगी। फिर पाँच छह घंटे पैदल चल कर भजन करते हुए 'भिक्षा'। इस परिश्रम के लिये 'पान्ता भात' (रात भर पानी में भिगोया भात) नमक, और कच्ची मिर्च के साथ कम खर्च के नास्ते से बेहतर और क्या हो सकता है? पैसों को तो जनसेवा के लिये एकत्र किया जा रहा था, अत: व्यक्तिगत खर्च जितना कम से कम हो, उस ओर ध्यान देना अत्यावश्यक था। दोपहर एक देढ़ बजे लौटकर स्नान आरती के बाद दोपहर का भोजन। भिक्षा में पाये हुए पाँच घरों के चावल, दाल और एक तरकारी—उससे ही परम तृप्ति का अनुभव होताथा। संन्ध्या चार बजे चारण-दल फिर निकल पड़ता। सन्ध्या की पूजा आरती के बाद सब जप में बैठ जाते। स्वामी ज्योतिर्घनानन्दजी ने लिखा है, "दल में सबके अन्दर इस समय मानो

एक महाभाव उमड़ आता था—कौन कितनी देर ध्यान जप कर सकता है या मौन रह सकता है, इसी की मानो प्रतिद्वन्द्विता चल रही हो। किसी को किसी की ओर देखने या बातें करने का समय ही नहीं मिलता था। विभिन्न लेखों में उल्लेख है कि चारण दल के कोई-कोई स्वामीजी प्राय: सारी रात अनाहारी रह कर पूजा-जप-ध्यान में ही बिता देते थे। उनकी एकनिष्ठता दल के ब्रह्मचारियों पर प्रभाव डालती थी। उनकी निष्ठा ध्यान जप में बढ़ती थी। स्वामीजी महाराज मेरे पिता से कहते, "श्रीशबाबू, मेरे संघ में किसी दिन भी सिल्क का गेरूआ और विलासिता का भाव प्रवेश न कर पायेगा।"

स्वामीजी महाराज के इस कथा प्रसंग में मैं अपना अनुभव बताना चाहूँगा—स्वामीजी महाराज को देह त्याग किए प्राय: पच्चीस वर्ष होने को आये। तब मैं डायमण्ड हार्बर में आश्रम के स्कूल का प्रधानाध्यापक था। एक बार कुछ स्वामीजी के साथ दुर्गा पूजा के उपलक्ष्य में काशी जा रहा था। बड़े स्वामीजी (स्वामी सच्चिदानन्दजी) और संघ के सभी प्रधान स्वामीजी भी डिब्बे में बैठे थे। सन्ध्या की पूजा आरती हुई। थोड़ी देर बाद ही भोजन दिया जायेगा। एक स्वामीजी ने मेरे हाथों में थाली पकड़ा दी। खाना क्या है, इसका पता भी किसी को न था। कुछ देर बाद देखता हूँ एक बड़ा ड्राम खींच कर लाया जा रहा है। उसमें दोपहर के पके भात में पानी डाल कर रखा हुआ था। उसके साथ आलू कुम्हड़े का साग, नमक और हरी मिर्च थे। याद आ गयी बचपन की बात—मदारीपुर में वैशाखी पूर्णिमा के उत्सव पर सुबह ही मैं आश्रम में उपस्थित हो जाता था। स्वामीजी महाराज सामने बैठ कर सन्यासी और ब्रह्मचारियों को भोजन परोसते थे। मेरे हाजिर होने पर कहते, एक थाली लेकर बैठ जाओ। बड़े करछुल से एक करछुल भात, पानी की तरह पतली दाल, कालेजीरे का छौंका लगा हुआ कुम्हड़े का साग।

स्वामीजी महाराज पूछते—क्यों रे अच्छा बना है न ? खाते-खाते मैं सिर हिलाता। उस दिन ट्रेन में वही पनियाला भात खाते-खाते विचार आया था, स्वामी जी महाराज न रहे पर उनकी परम्परा tradition अभी भी चली आ रही है।

एकबार स्वामीजी महाराज जीवकल्याण के लिये स्वयं भिक्षा की झोली लेकर निकले थे, वह कहानी सुना रहा हूँ—

१९२३ सन्। आचार्यदेव ने तब सन्यास नहीं लिया था। तब वे विनोद ब्रह्मचारी के नाम से जाने जाते थे। सावन का महीना था। रास्ते-घाट सब जलमग्न थे। एक गांव से दूसरे गांव तक जाने का एकमात्र साधन नौका ही था। एक ही मकान के एक घर से दुसरे घर तक जाने के लिये भी चचड़ी की जरूरत पड़ती थी। ऐसे भरे हुए एक बरषात के दिन ब्रह्मचारीजी ने एक नवागत सेवक (परवर्ती कालके स्वामी

ओंकारानन्द) से कहा, "चलो, टोले पर चलें।" सेवक नया था, हठात् इस प्रकार के प्रस्ताव को समझ न पाया। उसने जिज्ञासु नजरों से स्वामीजी की ओर देखा। उसके मन के भाव को समझ स्वामीजी ने कहा, "धन एकत्र करने के लिये टोले पर जाना होगा। आश्रम चलाने के लिये तो रूपयों की जरूरत पड़ती है। मेरे साथ चलने से, पैसों का संग्रह किस प्रकार करते हैं, सीख पाओगे।"

सेवक को चंदा एकत्र करने का कोई अनुभव न था अत: लोककल्याण के लिये ब्रह्मचारीजी का साथ दे पाने के कारण उसे खुशी हो रही थी। मदारीपुर आश्रम के घाट से एक छोटी डोंगी में वे रवाना हुए। जाते समय चंदा संग्रह के सम्बन्ध में कुछेक प्रश्न सेवक ने रखे। सेवक ने पूछा "कौन चन्दा देगा? कितना चन्दा जमा होगा? ब्रह्मचारी ने कहा—प्रत्येक ग्रामवासी के घर जाकर चंदा मांगना होगा। कुछेक संख्या का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, इतना रूपया जमा हो सकता है।"

सेवक ने पूछा, इतने रूपये क्या निश्चित हैं? ब्रह्मचारी ने कहा, नहीं कुछ भी पहले से तय नहीं है। सेवक ने कहा, यदि इतने रूपये न मिले तो? ब्रह्मचारी ने गंभीरता से कहा, हाँ हो सकता है। उनके गांभीर्य को देख सेवक की आगे पूछने की हिम्मत न हुई।

ब्रह्मचारी दो दिन तक मुहल्ले में रहे। उनके कठोर ध्यान साधना और वैराग्य के चर्चे चारों ओर फैल चुके थे। अत: उनके आने की खबर गांव में फैल गयी थी। डोंगी में बैठ घर-घर जा धन इकठ्ठा किया जाने लगा। अपने-अपने सामर्थ्यनुसार सबने कुछ न कुछ दिया ही। धन एकत्र कर तीसरे दिन मदारीपुर लौटना निश्चित हुआ। सेवक और ब्रह्मचारी नौका पर चढ़े। सेवक का मन तीव्र संशय से पूर्ण था। ब्रह्मचारी संकल्प के पक्के हैं, यह सुना था परंतु देखा कहाँ। संकल्प तो पूर्ण नहीं हुआ; जितने रूपये संग्रह की बात थी उतने तो नहीं जुटे।

नौका चल रही थी, सेवक के मन में संशय की आँधी बह रही थी। जिनके हाथों अपना सम्पूर्ण जीवन सौंपे दे रहा हूँ, वह क्या संकल्प-सिद्ध नहीं है? मन में जब आलोड़न हो रहा था तभी किसी ने चिल्लाकर कहा, "माँझी नाव रोको", एक वृद्धा नौका रूकवाने का विनय कर रही थी। ब्रह्मचारी ने नौका घाट पर लगाने का आदेश दिया। वृद्धा ने ब्रह्मचारी को प्रणाम कर पुराने कपड़ों में बंधी एक छोटी पोटली ब्रह्मचारी के हाथों में थमाते हूए कहा, यह सामान्य सी राशि आश्रम के काम में लगायी जाये। ब्रह्मचारी ने मुस्कुरा कर वृद्धा द्वारा दी गई पोटली लेली। अपनी मीठी बातों से उसे तुष्ट किया और फिर नौका पर चढ़ नौका चलाने के लिये कहा।

ब्रह्मचारी ने सेवक के हाथ में पोटली देकर राशि गिनने के लिये कहा। सेवक ने रूपये गिने। ब्रह्मचारी ने कहा—इस गांव से हमने इतने रूपयों का संग्रह किया। वृद्धा ने इतने दिये। कुल रूपये इतने हुए। इसके बाद ब्रह्मचारी ने हँसते हुए कहा, जितने का संकल्प किया था उतना पूरा हुआ।

सेवक चकित हो गया। मन का संशय तो उसने खोलकर नहीं कहा था, फिर ब्रह्मचारी क्या अन्तर्यामी हैं? संकल्पसिद्ध महापुरुष की शक्ति के ऊपर मन में संशय लाने के कारण सेवक लज्जा और पश्चातप से भर उठा था।

मन में प्रश्न उठ सकता है, —ईश्वरीय शक्ति से संपन्न महापुरुष को अर्थ संग्रह के लिये द्वार-द्वार पर क्यों फिरना पड़े? वे अपनी अलौकिक शक्ति या विभूतियों के बल पर क्या रूपये एकत्र नहीं कर सक्ते? योग से प्राप्त आठों सिद्धियों के भरोसे वे ऐसा क्यों नहीं करते? इस प्रकार की बातें आचार्यदेव के कानों में भी पहुँची थी। इस पर उन्होने कहा था, "योगशक्ति या आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव दिखाकर अर्थोपार्जन करना और वेश्यावृत्ति के द्वारा अर्थोपार्जन करना एक ही बात है। जिस शक्ति का उद्देश्य समग्र जाति के वीच धर्मभाव और आदर्श का विस्तार करना हो उसे क्या तुच्छ अर्थोपार्जन में व्यय करूँगा। किसी आचार्य ने किसी भी युग में ऐसा नहीं किया है और करते भी नहींहैं।"

अन्तर्यामी

संघनेता के भक्तों, दीक्षाप्राप्त शिष्यों, अनुरागियों को कभी-कभी ऐसा लगता कि आचार्यदेव क्या अन्तर्यामी हैं जो बिना बोले ही उनके मन की बात भाँप लेते हैं? कुछ न मांगने पर भी उनकी मांगे पूरी कर देते हैं। मन के कोने में छिपी कोई बात, कोई संशय उनके लिये गोपनीय नहीं रह पाता। जिन्हें इनका साक्षात् अनुभव हुआ है उनकी लिखी कई कहानियां मैंने पढ़ी हैं। उनमें से कुछेक घटनाओं को उद्धृत करता हूँ।

श्रद्धेय सातकड़ीपति राय स्वाधीनता पूर्व अखण्ड बंगाल के लोकप्रिय कांग्रेसी नेता तथा दीनबन्धु चित्तरंजन दास के सहकर्मी थे। वे लिखते हैं,—

"मेरा गांव मेदिनीपुर है और मेरा कार्यक्षेत्र भी साधारणत: मेदिनीपुर और कलकत्ता है। सन्, तारीख मुझे याद नहीं। मेदिनीपुर जिले से पुलिस के अत्याचार से भागे हुये प्राय: पचास व्यक्ति छिपने के लिए मेरे घर ठहरे थे। वे सन्ध्या के समय आये थे। रात्रि के भोजन की व्यवस्था कर चुका था और अब मेरे पास एक भी पैसा न था। कुछ उपाय समझ में नहीं आ रहाथा। अत: २११, रासविहारी एवेन्यू पर स्थित

भारत सेवाश्रम के मुख्यालयमें पहुंचा। पूछने पर मालुम पड़ा, स्वामीजी महाराज बैठक में ही हैं। बिना अनुमति ही प्रवेश कर उन्हें प्रणाम कर बैठा ही था कि एक ब्रह्मचारी को उन्होंने आदेश दिया 'सातकड़ी को २०० रूपये लाकर दे दो।' मैं तो स्तम्भित रह गया। मैने पूछा, "मुझे रूपयों की जरूरत है और इसी लिये मैं आपके पास आया हूँ। हे अन्तर्यामी यह आप कैसे जान गये? वे किंचित हँस भर दिये। उस प्रसंग में आगे उहोंने कुछ भी कहने नहीं दिया। सन्यासी ने रूपये लाकर मुझे दिये तो उन्होंने कहा, "आप जाईये, इस समय घर पर आपका रहना अत्यन्त जरूरी है। प्रणाम कर उठ कर चला आया। सोचते-सोचते घर लौटा कि ऐसा सर्वज्ञ महापुरूष तो देखा ही नहीं। मेरी जरूरत जान कर बिना मांगे ही मेरी सहायता की।

आचार्य देव के समक्ष उनकी आश्रित सन्तानों की कोई इच्छा या विचार छुपा नहीं रह पाता था। इस संबंध में उन्होंने कहा है, "मैं सब समय ही तुम्हारा सब कुछ जान, सुन, समझ सकता हूँ। यहाँ किसी भी प्रकार की चालाकी, चतुराई, ठगी नहीं चल सकती। तुम्हारा भूत, वर्तमान, भविष्यत सब मेरे ही अधीन है। इसी से तुम्हारे अन्तर का कुछ भी मेरे लिये अज्ञात नहीं है।"

स्वामी सम्बिदानन्दजी ने अपने ब्रह्मचारी जीवन की एक घटना का उल्लेख कर गुरू महाराज की इस उक्ति को चरितार्थ किया है। १९३४ सन् की दुर्गापूजा के समय आचार्यदेव काशी में थे। सन्यासी, ब्रह्मचारी आदि प्रायः सभी लोग थे। उन दिनों स्वामी सम्बिदानन्दजी महाराज ब्रह्मचारी थे। आचार्य देव के सामने एक कटोरा खीर रखी गयी। एक ही कटोरा देख ब्रह्मचारी थोड़े निराश हुए। अनजाने ही उसके मन के किसी कोने में खीर के प्रति आसक्ति जगी थी। अपने आपको धिक्कारते हुए वे उसी पल वहाँ से हट गये।

रात का प्रायः एक बज रहा था। सब सोये हुए थे। एक सन्यासी ने आकर उन्हें जगाया और कहा—"स्वामीजी महाराज बुला रहे हैं"। आँखें मलते-मलते उसने जाकर स्वामीजी को प्रणाम किया। उन्होंने पूछा, सो गये थे क्या? ब्रह्मचारी ने कहा 'हाँ'। स्वामीजी महाराज ने चौकी के नीचे रखे एक बर्तन की और संकेत करते हुए उसे अपने पास लाने के लिये कहा। ढक्कन खुलते ही ब्रह्मचारी स्तभित रह गया—एक कटोरा खीर, उस पर किनारे पर दो अंगुलियो के निशान मात्र थे। लज्जा और विस्मय से पूर्ण उस ब्रह्मचारी को अपने सामने बैठा कर सारी खीर उसके सामने परोस दी और खाने का आदेश दिया। ब्रह्मचारी ने कहा कि वह इतना न खा पायेगा तो उन्होंने कहा, खा लो खा लो, ठिक ही खा पाओगे, कुछ नहीं होगा।

स्वामी सम्बिदानन्दजी ने अन्त में लिखा है—जाने-अनजाने में, इच्छा-अनिच्छा से, स्वेच्छा-परेच्छा, गोपन या प्रकाश में, हम जो कुछ भी सोचते, चाहते, कोई भी

बात भूत-वर्तमान-भविष्यवेत्ता अर्थात् त्रिकालदर्शी आचार्यदेव से छिपी नहीं रहती। इस बात में कोई सन्देह नहीं है।

खाने की ऐसी ही एक घटना घटी थी स्वामी कृष्णानन्दजी के जीवन में। बाज़ितपुर आश्रम में उत्सव की तैयारी चल रही थी। सुबह खाकर सब ब्रह्मचारी अपने-अपने काम में लगेंगे। सबके लिये खिचड़ी पकायी जा रही थी। खिचड़ी बन जाने के बाद स्वामीजी महाराज सबको अपने सामने बैठाकर परोसेंगे। ऐसे समय स्वामी कृष्णानन्द जी को सबसे पहले खाना खा लेने का आदेश मिला। चूल्हे से उतारी गरमागरम खिचड़ी उन्हें परोसी गयी। उसे खाकर वे फिर सबको परोसने के लिये तैयार हुए। सब अपनी थालियां लेकर बैठ गये। स्वामीजी महाराज ने अपने कमरे की चौकी के नीचे रखे हुए घी लाने का आदेश कृष्णानन्दजी को दिया। गाय का शुद्ध घी था—जैसा रंग वैसी खुशबू। सबको खीचड़ी के साथ दो चम्मच घी भी परोसा गया। कृष्णानन्दजी परोसते-परोसते सोच रहे थे इतने स्वादिष्ट घी के साथ खिचड़ी खाने से कितना आनन्द मिल रहा है। मैं देर से खाता तो शायद यह आनन्द मुझे भी मिलता। सबके खा चुकने के बाद स्वामीजी महाराज स्वयं खाने के लिये उठे। हठात् कृष्णानन्दजी को संबोधित करते हुए कहा, "एक बार खा लेने पर क्या दुबारा नहीं खाया जा सकता? घी डालकर और एक बार खा लो।" मन की छिपी हुई इच्छा आचार्य देव क सामने छिपी नहीं रहती। स्वामी कृष्णानन्द जी केवल लज्जित ही नहीं हुए सामान्य वस्तु पर आसक्ति के कारण संताप से भी भर उठे थे। इसके बाद स्वामी कृष्णानन्द जी ने प्रण किया था कि वे जीवनभर घी को हाथ भी नहीं लगाएंगे।

आचार्यदेव ने सन्यासी सन्तानों के मन की बात जानने के प्रसंग में एकबार स्वामी सदानन्दजी से कहा था, "मनुष्य के मन की बात जानना बहुत कठिन नहीं है। साधन-भजन के द्वारा मन को संयमित करने से मन के भाव समझना कठिन नहीं होता।" इस बात से उन्होंने समझाना चाहा था, सिद्ध-महापुरुष आचार्यदेव अपने शिष्यों के मनोभावों, मन की बातों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। यह बात क्या केवल उनके आश्रित सन्यासी सन्तानों के लिए ही सत्य है? उसके बाहर, जो उनके अनुरागी हैं पर दीक्षित नहीं; उनके उपदेश सुनने के लिये अथवा किसी विषय संबंधी इच्छा से आते हैं; उनके लिये सत्य नहीं है? ऐसे लोगों ने भी समय-समय पर कई बार उनके अतर्यामी रूप का दर्शन पाया है और वे विस्मित रह गये हैं।

प्रति वर्ष बाजितपुर के आश्रम में माघी-पूर्णिमा के दिन उत्सव होता था जिसमें हजारों लोग भाग लेते थे। उनको दो वक्त परोसने के लिये बहुत सारे केले पत्ते लगते थे। आचार्य देव केले पत्ते जमा करने पर जोर देते थे। दाल, चावल, नमक, तेल कम

पड़ने पर बाजार से किसी भी समय मंगवाये जा सकते हैं। केला पत्ता कम पड़ने पर बाजार से मंगवाया नहीं जा सकता। पत्तों को लाने का ठेका प्रतिवर्ष कुछेक लोगों को दिया जाता था। उत्सव से पहले आचार्यदेव ने उन्हें बुलवा भेजा। उन्होंने सांठ-गांठ करली कि प्रत्येक वर्ष केले पत्ते की कटायी का दस आना मिलता है इस बार वे ग्यारह आना लेंगे। एक ने कहा, भाई! साधु कलक्ता से फल लेकर आये है; हमें भी कुछ देंगे क्या? दूसरे ने कहा, चलो न चलकर देखते हैं, मिल भी सकता है।

इस तरह परामर्श करते-करते चारों आचार्यदेव के पास गये। स्वामीजी को प्रणाम करने पर उन्होंने उन्हें बैठने के लिये कहा। उनमें से किसी के कुछ कहने से पहले ही स्वामीजी महाराज ने हँस कर कहा, 'तो ठीक है, इस बार ग्यारह आना मजूरी दी जायेगी। पत्तों की कटाई शुरू करो।' सब अवाक रह गये। किस प्रकार साधु के सामने से भागें, यह सोच रहे थे। फिर जिसने फल की इच्छा की थी उसकी ओर देखने पर ही वह थोड़ा घबरा गया। स्वामीजी ने सेवक से दो नारंगियां लाने के लिये कहा। नारंगी उस आदमी के हाथ में रखते हुए कहा 'थे नारंगियां कलकत्ता से लायी गयी हैं।' उस आदमी को काटो तो खून नहीं। संतरे हाथ में ले किसी प्रकार वह तो वहाँ से भागा। बांकी तीनों भी निकलने का अवसर पाते ही निकल आये।

इस केलेपत्ते को लेकर ही एक और घटना घटी थी जिसका उल्लेख आचार्यदेव के बचपन के साथी निशिकान्त दत्त महाशय ने किया है। घटना बहुत ही छोटी है पर यह सिद्ध होता है कि आचार्य देव सर्वदर्शी, सर्वज्ञ थे।

बाजितपुर में माघी पूर्णिमा के उत्सव की तैयारियां चल रही थी। सन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भक्त सब ही उत्सव की सफलता के लिये दिन रात परिश्रम कर रहे थे। एक दिन आचार्यदेव अपने कमरे में बैठे काम कर रहे थे। गृहस्थ भक्त रमेश दास ने आकर कहा, चौराशी से एक आदमी दस हजार केले के पत्ते लेकर आया है। तीन रूपये हजार की दर से ३० रूपये होते हैं। आचार्यदेव थोड़ी देर चुप रहे फिर कहा, दस हजार पत्ते ही हैं यह तुम्हें कैसे मालूम पड़ा? प्रत्येक बण्डल में २०० करके पत्ते हैं। बण्डल गिनने से ही सब गिन लिये गये। बण्डल गिनने पर ही क्या सब पत्ते गिन लिये जाते हैं? पत्ते केवल छह हजार है। फटे-फटे निकाल देने से पाँच हजार होते हैं। कह कर आचार्यदेव पुनः काम में लग गये।

रमेशबाबू विस्मित हो सोचने लगे, स्वामीजी महाराज ने गिनना तो दूर आँखों से देखा तक नहीं। उन्हें कैसे पता चला कि पत्ते कम हैं। अपना कौतूहल मिटाने के लिये उन्होंने पाँच छह लोगों को गिनने पर लगाया। एक-एक पत्ता अलग-अलग करके गिना गया। आचार्यदेव ने जो कहा था वहीं सत्य निकला। पत्ते कम निकले। उस आदमी ने लोभ में आकर प्रत्येक बण्डल में पत्ते कम रखे थे।

त्रिकालदर्शी आचार्यदेव तरूणावस्था में, जब वे ब्रह्मचारी थे, क्या होगा या क्या घटने वाला है, इस सहज भाव से बतलाते थे कि सब विस्मित रह जाते थे। १९१६ सन् में ब्रह्मचारी विनोद ढाका गये थे मैट्रिक की परीक्षा दैने। उनके साथ उनका सहपाठी किरणराशि नाग भी था (परवर्ती जीवन में उसने दीक्षा ली थी) एक दिन अचानक ब्रह्मचारी ने कहा, "घर लौट कर देखूंखा कि गदाई इस संसार में नहीं रहा।" किरणबाबू को आश्चर्य हुआ। गदाई स्वामीजी महाराज का भतीजा था। घर से चलते समय उसे स्वस्थ देख आये थे। सहपाठी होने पर भी किरण विनोद की सत्यनिष्ठता, तथा चरित्र बल के कारण उन पर श्रद्धा रखते थे। किन्तु विनोद अर्न्तदृष्टि युक्त क्रान्तिदर्शी हैं, इसका आभास भी उसे नहीं था। अत: उसने ब्रह्मचारी की बात की सत्यता को परखने के लिये अपनी क़ॉपी में तिथि और समय लिख कर रख दिया (वापिस लौटने पर उन्होंने सुना गदाई उसी दिन, उसी समय हैंजे के प्रकोप से अचानक ही मृत्यु को प्राप्त हो गया था।

शिशु गदाई को, मृत्यु के बाद गांव में ही कब्र खोद कर दफना दिया गया। लगता है गडढा गहरा नहीं खोदा गया था। सियारों ने मिट्टी खोद कर उसका देह निकाल कर खाना शुरू कर दिया। साधक ब्रह्मचारी विनोद गदाई के सिर का कंकाल (खोपड़ी) लेकर घर आये। उसे धो पोछ साफ कर अपनी साधना के आसन पर कपड़े से ढंक कर रख दिया। उनकी दीदी के जिज्ञासा करने पर कि कपड़े से ढंकी चीज क्या है विनोद ने दिखला दिया कि क्या चीज है। दीदी काँप उठी और बोलीं यह क्या, मृत व्यक्ति का मुण्ड ? कहाँ से ले आया तू इसे ? विनोद ने सब खोल कर बतलाया। हिन्दू विधवा के संस्कार के कारण दीदी के लिये यह सब अनाचार था। उन्होंने कहा, मृत देह छूने पर स्नान करते हैं, अैर तूने उसे अपने कमरे में ला रखा है ? यह क्या शैतानी है ? इसपर थोड़ा हंस कर विनोद ने कहा, "यह तुम्हारा भतीजा था। एकदिन इस माथे को ही तुम चुमती चाटती थी। गोद में उठाये-उठाये फिरती थी। इसके भावी जीवन को लेकर कितनी आशा-आकांक्षाएं पाल रखी थी। आज उसका परिणाम अपनी आँखो से देख रही हो। इसका मांस सियार-कुत्ते खा रहे थे। यही तो मनुष्य का जीवन है। देह का अन्तिम परिणाम तो यही है। याद रखो, यह देह नश्वर है, जीवन और यौवन क्षणभंगुर है। जिस शरीर के भोग के लिये मनुष्य पागल के समान दौड़ता है वह शरीर मिट्टी में मिल जाने वाला है। या चिता की अग्नि में जलकर राख हो जायेगा।" उनका यह कथन जगत की अनित्यता, मानव देह की नश्वरता के संबंध में शाश्वत सत्य है।

दीदी हेमांगिनी देवी अवाक हो कर, मन्त्रमुग्ध हो वैराग्य की यह महावाणी सुन रही थी। उस खोपड़ी को हाथ में ले कर विनोद ब्रह्मचारी घण्टों, वैराग्य

चिन्तन-मनन में बिता देते थे। आचार्यदेव ने नये दीक्षित ब्रह्मचारियों के मन में जीवन की अनित्यता और नश्वरता का तीव्र बोध जगाने के लिये शमशान में दिन बिताने के लिये कहा था। ब्रह्मचारी विनोद के जीवन में उनका प्रिय साधना-स्थल शमशान ही था।

अलौकिक

आचार्य स्वामी प्रणवानन्द जी ब्रह्मज्ञ पुरुष थे। सब जीवों पर उनकी असीम अनुकम्पा थी। लाखों लाख व्यक्ति शान्ति और सान्त्वना पाने के लिये उनके पास आते थे। वे जब भी, जहाँ भी गये, हजारों लोग उनकी कृपा पाने के लिये जुट गये। जो आते, वे सब केवल आशीर्वाद या उपदेश पाने के मतलब से ही नहीं आते थे। तपोसिद्ध महापुरुष के पास लोग अपनी आध्यात्मिक समस्या को लेकर आएंगे, यह तो स्वाभाविक ही है। धार्मिक और आध्यात्मिक उद्देश्य के अतिरिक्त भी लोग अपनी सांसारिक समस्याओं को लेकर भी चले आते थे। किसी को मुकदमें में जीत चाहिये थी, कोई पुत्र पाने की कामना से आता था, कोई नौकरी पाने की आशा से आता था तो कोई अपनी बीमारी ठीक करने की प्रार्थना लेकर आता था। अधिक व्यक्ति रोग निराकरण के लिये ही आते थे। साधारण मनुष्य सोचते थे वे करूणा के अवतार हैं, तपोसिद्ध महापुरुष हैं। उनकी दया होने पर उनकी बीमारी दूर हो जायेगी। आचार्यदेव उहें समझाते हुए कहते, "मैं कोई डाक्टर या कविराज नहीं हूँ कि मैं तुम्हारी बीमारी दूर कर सकूं।" आचार्यदेव साधारण रोग के निराकरण के लिये योगशक्ति का अपव्यवहार उचित नहीं मानते थे। इसकी वे निन्दा करते थे। फिर भी अपनी अनिच्छा के बावजूद उन्हें अपने आर्त्त भक्तों की पुकार सुन उनकी व्याधि हरनी पड़ती थी। करूणा की प्रतिमूर्ति आचार्यदेव हजारों हजार शिष्यों का पापभार अपने उपर ले लेते थे। शरणागत भक्तों की आधिव्याधि भी अपने शरीर पर लेकर उन्हें रोग मुक्त कर देते थे। एकबार एक गृहस्थ भक्त ने जिज्ञासा की थी—महापुरुषों को व्याधि क्यों होती है? उन्होंने एक वाक्य में कहा था—"तुम लोंगों के लिये।"

आचार्यदेव स्वयं भी कई बार गंभीर रुप से बीमार पड़े थे। १९३३ में आचार्यदेव को घातक फोड़ा निकला। इस प्रसंग में वेदानन्दजी ने लिखा है—इस व्याधि का परोक्ष कारण जो भी क्यों न हो, प्रत्यक्ष कारण था एक ब्यधिग्रस्त बालक की माँ की करूण पुकार से विगलित हो कर उन्होंने उस बच्चे की व्याधि को अपने ऊपर ले लिया। हमलोगों ने उस स्त्री को पुत्रसहित कई बार आते देखा था। हमारे बार-बार बिरोध करने पर भी आचार्यदेव उन्हें बार-बार अपने पास बुलाया करते थे।" (श्रीश्री युगाचार्य जीवन चरित)।

शरणागत पर करूणा कंरने के निमित्त बार-बार आचार्य देव अपने आपको

विपत्ति में डाल लेते थे। स्वामी सदानन्द जी ने अपने जीवन में घटी एक ऐसी ही घटना का वर्णन किया है।

एकदिन मिर्जापुर के आश्रम में सुबह आठ बजे दुबला-पतला, जीर्ण-शीर्ण वाला एक व्यक्ति आचार्यदेव के दर्शन की अभिलाषा से आया। आचार्यदेव के दर्शन का समय निर्धारित किया हुआ था, उसके अतिरिक्त उनका दर्शन नहीं मिलता था। उस आदमी को कहा गया कि वह थोड़ी देर प्रतीक्षा करे। वह मिले बिना जाने को तैयार नहीं था। चार घण्टे वह छत पर बैठा प्रतीक्षा करता रहा। वह व्यक्ति दृढ़ संकल्प करके ही आया था कि अभीष्ट पूर्ण न होने तक वह वापिस नहीं लौटेगा। आचार्यदेव के कानों में शरणागत भक्त की प्रार्थना पड़ी थी। दीर्घ धैर्य की परीक्षा लेने के बाद आचार्यदेव ने उसे अपनी उंगली के संकेत से अपने पास बुलाया। वह भक्त आचार्यदेव के पास पहुँचा और उसने आचार्यदेव को साष्टांग प्रणाम किया। दोनों में क्या बातचीत हुई, किसी ने न समझा। लम्बी बातचीत के बाद वह व्यक्ति चला गया। उसके आने का उद्देश्य कोई तीसरा व्यक्ति न जान पाया।

इसके बाद आचार्यदेव स्नान के लिये उठे। उनके भोजन की व्यवस्था की जा रही थी। स्नान के पश्चात् तुरन्त ही उन्होंने कहा, "मुझे ज्वर सा लग रहा है, मेरा बिस्तर तैयार करो।" बिना कुछ खाये ही वे सो गये। सोने के साथ ही साथ जोरदार कंपकंपी के साथ बुखार आया—१०३° तक चढ़ा। पहले से बीमारी का कोई लक्षण नहीं, भोजन के समय अचानक इतना ज्वर देख सब चिन्तित हो उठे। कुछेक घण्टों के बाद शाम के समय बुखार उतर गया। आचार्य देव उठे, मुंह हाथ धोया, प्रसन्न चित्त से भोजन ग्रहण किया। उनको इस तरह प्रसन्न देख सब अवाक रह गये पर किसी में इतना साहस न था कि उस रहस्य को पूछते।

कुछ दिनों के बाद वही व्यक्ति फिर आया पर इस बार बहुत खुश था। उसका स्वास्थ्य पहले से सुधरा हुआ था। मुंह पर निराशा का भाव भी न था। उससे आने का उद्देश्य पूछने पर उसने सब खोल कर बतलाया। असंयमित जीवन यापन के कारण वह आदमी बहुत दिनों से एक असाध्य रोग से पीड़ित था। चिकित्सा में कोई कसर न रखी थी पर रोग जाने का नाम ही नहीं ले रहा था। व्याधि-मुक्ति का और कोई उपाय न समझ आने पर हताश हो कर उसने आत्महत्या करने का संकल्प लिया था। मृत्यु का सामना करने से पूर्व वह अन्तिम उपाय के रूप में आचार्यदेव की शरण में आया था। आचार्यदेव ने सब सुन कर उसे अच्छी चिकित्सा और संयमित जीवन यापन का उपदेश दिया था। पर उस आदमी ने वचन न पाने तक आचार्यदेव के चरण न छोड़े। अबोध शरणागत के व्याकुल क्रन्दन से द्रवित हो आचार्यदेव उसको यों ही लौटा न पाये। आचार्यदेव ने उसे आश्वासन दिया, अभयदान दिया। मनोकामना पूर्ण

होने पर वह प्रसन्नचित्त अपने घर लौटा। उस दिन से ही वह व्यक्ति धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा। अब वह पूर्णतः स्वस्थ है।

हम अपने रोग व्याधि से छुटकारा पाने के लिये महापुरूषों को कष्ट देते हुए जरा भी नहीं सोचते हैं। शरणागतों को कष्टमुक्त करने के लिये महापुरूषों को वे कष्ट स्वयं कितनी बार झेलने पड़ते हैं। और वे प्रसन्नता पूर्वक उन कष्टों को सहते हैं।

बाजितपुर के प्रियनाथ दास के पुत्र का अन्तिम समय आ गया था। मृत्यु पथ के यात्री सन्तान को गांव के नियमानुसार घर के बाहर सुला कर प्रियनाथ बाबू दौड़ कर आ पहुँचे आचार्यदेव के पास। महापुरुष की दया हो जाये, वे अगर अपनी कृपा दृष्टि एक बार उनके पुत्र पर डालें तो उनका पुत्र जी उठेगा। प्रियनाथ आचार्यदेव के पैरों पर गिड़कर रोने लगा। बाध्य हो कर आचार्यदेव प्रियनाथ के साथ उसके घर गये। लड़के को घर के अन्दर ले जाने को कहा। आचार्यदेव के अभय वाणी की संजीवनी से लड़के के निकलते प्राण वापिस लौट आये। वह भला चंगा हो उठा।

आचार्यदेव पूर्णियावासी संघ-अनुरागियों की प्रार्थना पर पूर्णियां गये हुए थे। वहाँ पर रायबहादुर ज्योतिश्चन्द्र भट्टाचार्य की स्त्री पर आचार्यदेव का विशेष अनुग्रह था। उन्होंने आचार्यदेव की कृपा के फल के विषय में स्वयं लिखा है—

"ठाकुर पूर्णिया में राय बहादुर निशिकान्त सेन के घर पर उतरे हुए थे। उनकी पत्नी आचार्यदेव का प्रवचन सुनने गयी थी। खिड़की से पहली बार उनके दर्शन हुए। लेकिन उनके श्रीचरणों में प्रणाम करने के लिये प्राण आकुल-व्याकुल हो उठे थे। घर लौटी, कुछ देर बाद ही पतिदेव ने कहलवाया "जल्दी तैयारी करो स्वामीजी महाराज हमारे यहां पधार रहे हैं।" ऊपर के कमरे में उनके बैठने के लिये आसन रखा गया। ठाकुर फूलों की माला पहने, हाथ में दण्ड लिये, सन्यासियों से घिरे आकर आसन पर बैठे।

सब प्रणाम करने लगे। उन्होंने सबको आशीर्वाद दिया। मेरे आनन्द का तो कोई ओर-छोर न था। मैं केवल उन्हें ही निहार रही थी।

कमरे के एक कोने में बैठी 'पशुनां पतिं पापनाशं परेशं... वेदसार शिवस्त्रोत का पाठ कर रही थी। किस प्रकार फिर से उनके दर्शन मिलेंगे यही सोच कर मन तड़फड़ा रहा था। दूसरे दिन पतिदेव से कहा। मैं फिर से उनके दर्शन करना चाहती हूँ। उन्होंने कहा—कैसे करोगी ? हमारे अहोभाग्य हैं कि वे एक बार हमारे यहाँ आये, आज ही वे वापिस जा रहे हैं। मैने कहा, वे तो निशिबाबू के घर पर ही हैं। मैं वहाँ जाकर उनेक दर्शन करूंगी। मैंने वहां पहुँच कर फूल, बेलपत्र रख ठाकुर को प्रणाम किया। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और बैठने के लिये कहा।

"तब मेरे हाथों पर बीस वर्ष पुराना एक्जिमा का घाव था। कितनी दवादारू की, साधु-सन्यासियों को दिखलाया किसी प्रकार ठीक नहीं हो रहा था। हाथ पर पट्टी बंधी हुई थी। ठाकुर ने मुझसे पूछा, "तुम्हारे हाथ को क्या हुआ है ? मैने एक्जिमा की बात बलतायी। उन्होंने कहा हाथ से पट्टी तो हटाओ। मैंने बड़े कष्ट से पट्टी खोल हाथ सीधा किया। मुझसे कहा, 'हाथ जोड़ो', फिर मेरे हाथ पर एक हरितकी और थोड़ा गंगाजल रखा। अपने घुटनों पर मेरे दोनों हाथ रख, सिर नीचा कर आंखे मूंदे कुछ बुदबुदाने लगे। प्रायः पन्द्रह मिनटों बाद चौंक उठे, निःश्वास लेकर मुझसे कहा, "अच्छा, तुम्हारे अनन्त जन्मों के पाप-ताप तुम आज मुझे दे दो, मैंने सब अपने उपर ले लिये।" इतना कह अपना दाहिना चरण आगे कर बोले, "हाथ के जल और हरितकी से मेरे चरणों में अंजलि दो।" मैने आदेश का पालन किया। तब मेरे दोनों कंधों पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "आज से तुम निष्पाप हो। तुम मेरी बहु-जन्मों की सन्तान हो।" मैने पूछा—"बाबा, क्या यह रोग ठीक हो जायेगा ?" उन्होंने कहा—"हाँ बिलकुल ठीक हो जायेगा। कहना न होगा, उस दिन से बीस वर्ष पुराना मेरा रोग दूर हो गया।"

"फिर मेरे दोनों कंधों पर हाथ रख कानों में मन्त्र फूंका। अच्छी तरह समझ न पाने पर लिख कर दिये। मैं उनके चरणों पर हाथ रखे बैठी थी, गंभीर भाव से स्थिर-दृष्टि से उन्होंने मेरी ओर देखा, मैं निर्वाक मुग्ध बैठी रही। फिर उन्होंने शिवपूजन का आदेश दे कर मेरे कंधों पर अपने दोनों हाथ रख कर कहा, "माँ, मैं तुम दोनों का जन्म-जन्मान्तर का गुरू हूँ। आज तुम्हें दीक्षा प्रदान किया, आज तुमलोगों ने महामन्त्र पाया।" मैं प्रणाम कर उठ खड़ी हुई। हृदय के बीच धड़कने बढ़ रही थी, मदमस्त शराबी की तरह शरीर हिल रहा था। कुछ सोचने, समझने की शक्ति न रही। किसी प्रकार मोटर में बैठ चली आयी। इसके बाद भी सारा दिन-रात मेरा शरीर मेरे वश में न था। (श्रीश्री युगाचार्य जीवन चरित)।

उसके बाद चारूबाला देवी एक और स्थान पर लिखती हैं—ठाकुर ने जबसे मेरे घाव को निहारा था, दुबारा नहीं हुआ। नहीं तो वर्षा के समय घाव बढ़ जाता था, पर उस बार नहीं हुआ। मैं आश्चर्य से सोच रही थी कि एक मनुष्य में इतनी शक्ति का समावेश कैसे हो जाता है ? न दवा-दारू, न पथ्य, केवल दृष्टि डालने से ही ठीक हो गया ? कितने आश्चर्य की बात है न। सारा दिन यही बात मेरे दिमाग में घुमा करती थीं। एक दिन स्वप्न में देखा, ठाकुर मेरे घर के दो-तल्ले की सीढ़ी पर बैठे हुए हैं। मेरे कुछ बोलने से पहले ही उन्होंने अंगुली से अपने पांव की ओर संकेत करते हुए कहा, "तुम्हारा घाव मैने ले लिया है।" इतनी बात कहते ही मेरी नींद टूट गयी।

दूसरी घटना का घटनास्थल है—बाजितपुर। आश्रम के प्रारभिंक दिनों की कथा

है। आचार्यदेव उन दिनों 'विनोद ब्रह्मचारी' या 'साधु' के नाम से जाने जाते थे। आश्रम में दो ब्रह्मचारी और उनके लीला सहचर दत्त महाशय थे। तब आश्रम का नामकरण 'भारत सेवाश्रम संघ' नहीं हुआ था। भिक्षा के ऊपर ही आश्रम निर्भर था। भिक्षा से ही दरिद्रनारायण की सेवा तथा अभ्यागतों का आदर सत्कार होता था। अभाव हो सकता है पर अभाव का लेश मात्र भी बोध न था। एक दिन सुबह-सुबह दत्त महाशय ने ब्रह्मचारीजी से कहा, "आज तो आश्रम में कुछ भी नहीं है, भोजन की क्या व्यवस्था होगी? ब्रह्मचारी जी ने स्मित हँसी से कहा, "अभी कुछ न कुछ व्यवस्था हो जायेगी।" दत्त महाशय समझ नहीं पा रहे थे कि कहां से आयेगा सब? कई बार ब्रह्मचारी जी को कहने पर भी एक ही उत्तर। इस बीच उन्होंने कीर्त्तन वाला कमरा साफ कर आसन बिछा कर रखने के लिये कहा। परंतु दोपहर के भोजन की व्यवस्था के विषय में एक शब्द भी न बोले।

थोड़ा समय बीत गया। पास ही लड़कियों की उलुध्वनि (मंगलकार्य के दौरान की गयी मुंह से विशेष ध्वनि) सुनाई पड़ी। अपने कमरे में बैठे ब्रह्मचारी ने हँस कर दत्त महाशय से पूछा, क्या सुन रहे हो? कहाँ से आ रही है यह ध्वनि? दत्त महाशय ने कहा लगता है की 'बूढ़ी ठाकुरानी' के चौरे पर कोई पूजा करने आ रहा है। ब्रह्मचारी ने सब जानते हुए भी अनजान सा बन दत्त महाशय की हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा, 'हाँ वही होगा।' इतना कह वे कीर्तन के कमरे में गये और अपने आसन पर बैठ गये। दत्त महाशय कुछ समझ नहीं पा रहे थे।

जो बाजे बजाते, उलुध्वनि देते आ रहे थे वे चौरे पर न रूककर सीधा आश्रम में आये और आते ही उन्होंने ब्रह्मचारी के लिये पूछा। दत्त महाशय ने कीर्त्तन का कमरा दिखला दिया।

बाजितपुर ग्राम के कालीमोहन दास, उनकी पत्नी एवं पड़ोस की लड़कियों ने ब्रह्मचारी जी को प्रणाम किया। फिर उनके चरणों को धोकर फूल-बेलपत्र से उनकी पूजा की। अन्त में टोकरी में भर कर लाये गये—दही, खीर, मोआ (मूड़ी-गुड़-नारियल के लडडू), सन्देश, रसगुल्ला, नारियल आदि बड़े यत्न से परोस कर ब्रह्मचारी जी को खिलाया। दत्त महाशय को भी परोसा गया। खाने के पश्चात ब्रह्मचारी जब प्रसन्नचित्त अपने आसन पर बैठे थे कालीमोहन ने हाथ जोड़ कर पूछा, साधु मन की इच्छा पूरी होगी न? ब्रह्मचारी ने प्रसन्नभाव से कहा, "अवश्य होगी।"

सबके चले जाने पर दत्त महाशय ने ब्रह्मचारी से पूछा, साधु बात क्या है? मैं तो कुछ भी समझ नहीं पाया। ब्रह्मचारी ने कहा, "कालीमोहन की सन्तान नहीं है, वह यहां संतान की मन्नत करके गया है।" कल उसकी पत्नी ने स्वप्न देखा था कि यहां

मन्नत मांगने से उसे सन्तान होगी। पुत्रहीन दम्पत्ति की मन की इच्छा पूर्ण हुई थी। उन्हें एक से अधिक सन्तान हुई थी।

जिस प्रकार शिशु अपने आपको माता-पिता के हाथों में निश्चिन्तता के साथ सौंप देता है उसी प्रकार अगर शिष्य भी अपने आपको गुरू के हाथों छोड़ दे तो कभी भी गुरूकृपा से वंचित नहीं हो सकता। शिष्य की एकनिष्ठता से घना जंगल हो, शत्रुओं के मध्य हो, आग में घिरा हो, समुद्र के मध्य तुफान में फंसा हो, कहीं भी फंसा हो गुरू उसके उद्धारक अवश्य ही होंगे। मनुष्य के जीवन में कभी-कभी ऐसा समय भी आता है जब भक्त मन-कर्म-वचन से बिना किसी शर्त्त के अपने आपको गुरू के श्री चरणों में सौंप देता है। हजारीबाग के श्रीरामप्रकाशजी जीवन में एकदिन ऐसी एक विपत्ति में फंसे कि अपने उद्धार के लिये सबकुछ भूल कर श्रीगुरू चरणों के ध्यान में डूब गये। रामप्रकाश जी का दृढ़ विश्वास था कि इस अंधेरे से करूणामय गुरू ही उन्हें प्रकाश की ओर ले जायेंगे। स्वामी परमात्मानन्दजी के मुख से सुना है—

"हजारीबाग के जननेता, बाद में मन्त्री श्रीरामप्रकाश ने एकदिन अति नाटकीय तरीके से आचार्यदेव से दीक्षा ली थी। १९३० में एकबार आचार्यदेव बिहार के भ्रमण के समय हजारीबाग गये थे। उनके पदार्पण से बंगाली बहुत खुश हुए थे पर स्थानीय बिहारियों का एक दल प्रसन्न नहीं हुआ था। इनके नेता थे शहर के प्रतिष्ठित वकील श्रीरामप्रकाशजी। स्थानीय बंगाली समाज ने आचार्यदेव को सब कुछ बता दिया था और यह भी कहा कि रामप्रकाशजी को मना लेने से बाकी सब ठोक हो जायेगा। आचार्यदेव का अस्थायी निवास रामप्रकाशजी के घर के सामने ही था। एक दिन शाम के समय रामप्रकाश अपने बन्धु-बान्धवों के साथ सलाह मशाविरा कर रह थे कि इस बंगाली साधु को कैसे जब्द किया जाये। ऐसे समय एक ब्रह्मचारी ने आकर उनसे कहा, "हमारे स्वामीजी आपको बुला रहे हैं।" प्रकाशजी नें पहले तो डाँट कर सन्यासी को भगा देना चाहा था पर फिर उसका शांत-शिष्ट व्यवहार देख बिना कुछ कहे, बेमन से उसके साथ चले आए। घर के अन्दर के एक कमरे की ओर दिखाते हुए सन्यासी ने उन्हें जाने के लिये कहा। कमरे के दरवाजे पर आकर उन्होने दीपक के मन्द आलोक में देखा कि "एक ज्योतिर्मय दिव्यकान्ति विराट पुरुष समाधिस्थ अवस्था में उनके सामने बैठा हुआ है। रामप्रकाशजी को लगा, वे साक्षात् ध्यानमग्न शिव को ही देख रहे हैं। विस्मय-विमूढ़ हो वे कुछ देर खड़े रहे फिर हठात् उनके चरणों पर साष्टांग करते हुए भूमि पर लोटने लगे। आचार्यदेव ने मुस्कुराते हुए उसके मस्तक पर हाथ रख उन्हें आशीर्वाद दिया। उनके थोड़ा प्रकृतिस्थ होने पर उसे सुबह स्नान करके पांच हरितकी लेकर आने के लिये कहा। दूसरे दिन भोर के समय ही रामप्रकाश जी की दीक्षा हो गयी।"

एकबार एक विशेष काम से रामप्रसादजी को दूर एक गांव में जाना पड़ा। उस गांव तक पहुंचने के लिये बीच में एक घना जंगल पड़ता था। उन्होंने सोचा था वे संध्या होने से पहले ही वापिस लौट आयेंगे। पर काम के समाप्त होते-होते सूर्य प्रायः अस्ताचल की ओर जा रहा था। उन्हें थोड़ी सी चिन्ता हुई। पर साथ में दो व्यक्ति लेकर, हाथ में मशाल ले वे संध्याको ही गुरू का स्मरण करते हुए निकल पड़े। वन-प्रान्तर तक पहुंचते-पहुंचते रात गहराने लगी थी। दोनों ओर पेड़ों से घिरी पगडंडियां, सामने गहरा अंधकार छाया हुआ, गाढ़ी कालिमा चारों ओर से ग्रसने को आ रही थी। सामने मशाल लिये एक व्यक्ति जा रहा था। केवल मात्र मशाल का प्रकाश जहां तक पड़ रहा था वहीं तक प्रकाश, उसके बाहर घोर अंधकार छाया हुआ था। कुछेक मीलों तक आदमजात का पता तक नहीं। हिंस्र जन्तुओं के चीत्कार से वन गूंज रहा था। तीनों लोग निरस्त्र थे, भयभीत और आतंकित भी थे। सांप-बिच्छुओं से घिरे इस घने वन से दैवी कृपा के बिना बाहर निकल पाना असंभव था। इस विपद में करूणामय गुरू ही एकमात्र संबल हैं। रामप्रकाश जी ने अपने आपको गुरू के हाथों में सौंप दिया उन्हीं की याद में डूब गये। हठात् उन्हें लगा कि उनके मशाल के आलोक से आगे न जाने कौन सा एक व्यक्ति उनके सामने-सामने जा रहा है। उसके हाथ में दण्ड है, उसने गेरूआ वस्त्र पहन ओढ़ रखा है। यह क्या उसकी आँखों का भ्रम है? अच्छी तरह आँखें मल कर विस्मय से भर कर उहोंने देखा स्वयं गुरू महाराज ही उनके आगे-आगे जा रहे हैं। इस दृश्य को देख वे इतने अभिभूत हो उठे थे कि दौड़ कर गुरू चरणों में प्रणाम करने की भी उन्हें सुधि न रही। भावाच्छन्न अवस्था में वे गुरू के पीछे-पीछे चलने लगे। इस अवस्था में वे कितनी दूर तक चले आये इसका ख्याल तक उन्हें न था। अचानक उन्होंने देखा गुरूदेव उनके सामने नहीं हैं। थोड़ी दूर पर ही आलोक दिखलायी पड़ रहा था। वे वन प्रांत पार कर गांव की सीमा तक आ पहुंचे थे। रामप्रकाशजी का दृढ़ विश्वास था उस विपत्ति में उनकी आकुल प्रार्थना की अवहेलना न कर पाये और शरणागत की रक्षा के लिये, उस भयानक वन के बीच, पथ प्रदर्शक के रूप में स्वयं गुरूजी आये थे।

बंगवासी कॉलेज के अध्यक्ष अजित रायचौधुरी को भी उनकी किशोरावस्था में विपत्ति से आचार्यदेव ने बचाया था। अध्यक्ष चौधुरी का विश्वास था कि नदी में उठे भयंकर तुफान से गुरूदेव की कृपा से ही वे बच पाये थे। परन्तु वे गुरूदेव की अयाचित करुणा का रहस्य बहुत दिनों तक समझ न पाये थे। प्रौढ़ावस्था में अपनी दीदी से शैशव की एक घटना सुन कर उस तुफानी सन्ध्या में उफनती नदी के किनारे आचार्य देव के आविर्भाव का कारण समझ पाये थे।

बाजितपुर तथा आमग्राम पास-पास ही है। अनिलबाबू का घर आमगाँव में था पर वे रहते मदारीपुर में थे। कभी-कभी वे अपने घर जाया करते थे। अपने पास के

गांव बाजितपुर के भारत सेवाश्रम संघ एवं विनोद ब्रह्मचारी का नाम उन्होंने सुन रखा था। साधु को देखा भी था।

अनिलबाबु ने लिखा है, "मेरा उपनयन (जनेऊ) संस्कार मेरे आमगाँव के घर पर अनुष्ठित हुआ। ...अनुष्ठान निर्विघ्न समाप्त हुआ, तथा दण्डभंग के बाद हमारे मदारीपुर लौट जाने का इन्तजाम किया गया। स्थानीय मांझी की एक साधारण नौका में हम चढ़े। ...कुमार नदी पार कर सन्ध्या के समय हमारी नौका आड़ियाल खाँ नदी में चलने लगी। थोड़ी देर बाद ही हमारी नौका चरमगुरिया बन्दरगाह और मदारीपुर के बीचों बीच के किसी स्थान पर थी। इसी समय आकाश में अचानक काले मेघ छा गये। कीर्तिनाशा नदी के पुत्र आड़ियाल खां ने विकराल रूप धारण कर लिया। नदी का यह रौद्र रूप देख हमारे तो प्राण भय से काँपने लगे। तूफान आ गया तो इस यात्रा में रक्षा करने वाला कोई नहीं। इस दुर्योग के समय सहसा मेरी नजर नदी पार के एक दृश्य पर पड़ी। आचार्य श्रीमत् प्रणवानन्दजी महाराज उस पार खड़े हैं। वे अपने स्वभाविक सन्यासी वेश तथा अभय मुद्रा में खड़े हैं। एकबार उन्होंने हमारी ओर अपना हाथ उठा अभय दान दिया। नदी के किनारे और कोई नहीं था। लगा, आर्त्तजनों के त्राता, विपन्नों के उद्धारक, सेवाव्रती, महाप्रवर्तक स्वामीजी महाराज की सदय दृष्टि हमारी नौका पर ही लगी हुई थी। अचानक प्रबल तूफान आया। जिन्होंने देखा है वे ही समझ पायेंगे कि यह तूफान कितना भयावह हो सकता है। तूफानी हवा हमारी नौका को प्रायः उड़ा कर ही ले गयी। नौका चौड़ में जाकर लटा घास के वन में फंस गयी। नौका के उलट जाने पर उसदिन हमारी जल-समाधि हो जाती। माँझी ने बांस की लग्गी से नौका को भरसक टिकाये रखने की कोशिस की, और हम सबको उसने लटा घास को जोर से पकड़े रखने के लिये कहा (लटा घास ईख के समान सक्त होती है)। हम सबने मिलकर वैसा ही किया। हम सबके ऊपर से आंधी तूफान का निष्ठुर ताण्डव नर्त्तन चलता रहा। काफी देर के बाद तूफान रूका, चाँद निकला। अब हमारी नौका ने धीरे-धीरे वह विराट नदी पार की तथा शहर पहुंची। इतने बड़े तूफान से बच कर हम घर पहुंचे थे। माँ पिताजी ने राहत की सांस ली। उस दिन मृत्यु के मुँह से हम सब कैसे बच पाये थे? तब से आज तक बराबर ही मेरी यह धारणा है कि महापुरुष स्वामी प्रणवानन्दजी महाराज की कृपा दृष्टि ने ही हमारी रक्षा की थी। किन्तु यह कृपा क्यों? इसका मूल सूत्र कहाँ है? मैं सोचता ही रहा था।"

इस बीच कई साल बीत गये। अध्यक्ष चौधुरी अपने जीवन में प्रतिष्ठित हुए। तब उनकी दीदी ने पिछले दिनों की बातें याद करते हुए कहा, "मेरे जन्म के कुछेक माह बाद ही मेरी माता सुखदासुन्दरी देवी परलोकगामी हो गयी। उस दिन अक्षय तृतीया

थी और यह घटना मदारीपुर के हमारे घर में ही घटी थी। मेरी माँ की मृत्यु शय्या के पास सब आत्मीय स्वजनों के साथ मेरे छोटे चाचा के अन्तरंग स्वामी प्रणवानन्दजी महाराज भी खड़े थे। मातृवियोगी शिशु का जीवन निरापद, निर्विघ्न रहे, उसका भविष्य उज्ज्वल हो यही आशीर्वचन उन्होंने दिया था। दीदी के द्वारा बताऐ जाने पर इस तथ्य ने मुझे विद्युत के समान झटका दिया। स्वामी प्रणवानन्दजी महाराज की अलौकिक शक्ति की बात बहुतों को पता है। दीदी की बात से अपने प्रश्न का समाधान पाकर मैने मन ही मन उस अलौकिक शक्ति के अधिकारी के चरणों में असंख्य प्रणाम किया। कुछेक महीने के शिशु के जिस रक्षा का आश्वासन उन्होंने दिया था, उसी को पूरा करने के लिये उस दिन सन्ध्या के समय आड़ियाल खाँ नदी के किनारे पर वे अवतरित हुए थे। उन्हीं की कृपा के कारण अनिलबाबू और उनके साथियों की रक्षा हुई थी।

उनकी इच्छा से या अनिच्छा से ही आचार्यदेव की तपोशक्ति के प्रभाव से कितने अघटन घटे है। संघ सन्तानों, दीक्षित शिष्यों तथा संघ के अनुरागियों ने कितनी ही घटनाओं को लिपिबद्ध किया है। और एक घटना का उल्लेख कर इस प्रसंग को यही समाप्त करता हूँ—"

प्रत्येक बार की तरह होली के उपलक्ष्य में १९३२ में आशाशुनी आश्रम में दो दिन व्यापी उत्सव का आयोजन किया गया था। प्रथम दिन, सारा दिन संकीर्त्तन होता रहा। दूसरे दिन शान्ति यज्ञ था। सहस्त्रों लोग यज्ञ देखने के लिये इकट्ठे हुए थे। "ॐ हर गुरू शंकर शिव शंभो" इस सिद्ध नाम के कीर्त्तन से आकाश मुखरित हो उठा था। आचार्यदेव यज्ञवेदी के पास यज्ञेश्वर के रूप में विराजमान थे। यज्ञ के अन्त में सबने वैदिक मंत्रोच्चार के साथ यज्ञ में आहूति डाली। आचार्यदेव की पूजाआरती खतम होने के बाद वे अपने कक्ष में चले गये। आकाश में घने मेघ छाये हुए थे। उन्होंने सबको जल्दी प्रसाद वितरित करने के लिये कहा। सबको कतार (पंक्ति) में बैठा खिचड़ी-प्रसाद देना आरंभ किया। इसी समय चारों ओर घना अंधेरा छा गया और भीषण मेघ गर्जन शुरू हुआ। अब वर्षा आयी-अब आयी। सारा आयोजन ही नष्ट हो जायेगा। उत्सव के प्रधान कर्मी, कोलकाता के कमलालय के मालिक सुरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ने घबरा कर स्वामीजी से कहा, "महाराज अब आप ही रक्षा करें। मुझे तो दुसरा कोई उपाय समझ में नहीं आ रहा। हजारों हजारों लोगों के लिये खिचड़ी ढाली हुई है, उसे हटाने का भी उपाय नहीं है। (गांव में मिट्टी काट कर गड्ढ़ा बनाया जाता था। उस पर मोटा करके होगला डाल कर खिचड़ी डाल दी जाती थी।) लोग भी खाने बैठे हैं। उनके पत्तलों में भी खिचड़ी परोसी गयी है। ठण्डी हवाएं बह रही है। वर्षा अब आने को है, अब क्या उपाय करें?"

आचार्यदेव थोड़ी देर चुप रहे फिर उन्होंने कहा, "नहीं, वर्षा नहीं होगी।"

दूर पर मेघ देख लगता है मुसलाधार वर्षा होगी। सब व्याकुल हो उठे। आचार्य देव बाहर आये, एक कुर्सी पर बैठ उदासीन भाव से आकाश की ओर देखने लगे।

वर्षा आयी पर आश्रम के पास नाले के उस पार बरस कर चली गयी। आश्रम के ऊपर एक बूँद भी न पड़ी। हजारों भक्तों ने निश्चिन्त हो प्रसाद ग्रहण किया और अवाक होकर महापुरुष की आश्चर्यजनक तपोशक्ति का प्रभाव देखा।

महापुरूषों की जीवनी पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे कभी भी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये या लोगों को चौंकाने के लिये अपने तपोशक्ति का प्रयोग नहीं करते। किन्तु कभी-कभी ऐसी विषम परिस्थिति जब आ पड़ती है तब उसे संभालने के लिये उन्होंने जो किया, साधारण बुद्धि उसकी मीमांसा नहीं कर सकते, इसी कारण उन्हें हम अलौकिक कहते हैं। (अन्तर्यामी और अलौकिक की कथाएं "कण्ठे कण्ठे करूणाकथा" से ली गयी है)।

महानिर्वाण का संकेत

१९४० में काशीधाम की दुर्गापूजा से पहले आचार्यदेव ने विश्वनाथ मन्दिर में जाने की इच्छा प्रकट की। एकदिन सन्यासी, ब्रह्मचारी, सेवकों के साथ मन्दिर में विश्वनाथ दर्शन के लिये गये। मन्दिर के एक दरवाजे से प्रवेश कर कुछ देर मन्दिर में रहे फिर दूसरे दरवाजे से आकर शोभायात्रा के साथ आश्रम में लौट आये। जो कभी किसी मन्दिर में नहीं गये। स्थूलदेह त्याग के तीन माह पूर्व मन्दिर क्यों गये? कोई नहीं जानता। क्या वहाँ जाकर उन्होंने अपने स्थान स्वर्गलोक लौट जाने का संकल्प लिया?

इसके बाद ही से आचार्यदेव में बदलाव दिखलायी पड़ा। वे प्रायः अनमने हो गये, सबसे उदासीन। किसी बात के लिये पूछने पर भी प्रायः उत्तर न दे चुप ही रहते। कभी-कभी 'जो समझ आये वही करो' या 'जो अच्छा लगे वही करो' जैसे उत्तर मिलते थे। उनके संसार की सन्तानें बड़ी हो गयी हैं, संसार का दायित्व लेने के उपयुक्त हैं। उनके हाथों सारा दायित्व दिया जा सकता है और स्वयं धीरे-धीरे पीछे हटना है—ऐसा ही भाव था उनका।

१९३९-१९४० इन दो सालों में संघनेता ने अपने सशस्त्र रक्षीदल के साथ पूर्व और उत्तर बंगाल का दौरा कर भीत और अत्याचारित हिन्दुओं को अभय प्रदान किया था। विगत तीन वर्षों से उन्होंने बंगाल, बिहार, उड़ीसा और युक्तप्रान्तों के अनेक स्थानों पर प्रचार अभियान तथा संघ के विविध कामों के लिये जो कठिन परिश्रम किया था उसके फलस्वरूप उनका स्वास्थ अच्छा नहीं जा रहा था। इस ओर

वर्ष का अन्त आ रहा है, सामने बहुत काम है, समय कम है, उनको विश्राम का समय कहाँ है?

एकदिन स्वामी वेदानन्दजी गुरूजी के चरणों को दबा रहे थे और मन ही मन सोच रहे थे, सबको तो आश्वासन दिया गया पर जलपाईगुड़ी, दिनाजपुर, रंगपुर तो जाना नहीं हुआ। अन्तर्यामी से सन्तान की कोई भी गुप्त इच्छा छिपी नहीं रहती। उसी समय उन्होंने कहा "एक टूर प्रोग्राम बनाओ। उत्तरबंग प्रचार और संगठन के लिये जाऊंगा।"

उत्तरबंग जाने से पहले निश्चय किया कि बाजितपुर के सिद्धाश्रम में जायेंगे। अपने मुंह से उन्होंने कहा, मेरा स्वास्थ बहुत ही खराब हो गया है। एकबार बाजितपुर के सिद्धपीठ पर जाऊँगा, शायद स्वास्थ्य अच्छा हो जाये। विदा लेने से पहले यह एक और छलावा था उनका। वे स्वास्थ्य ठीक करने वहाँ नहीं गये थे। अन्तिमबार बाजितपुर के सिद्धपीठ पर बैठ भक्तों द्वारा की गयी पूजा आरती को ग्रहण कर उन्हें आशीर्वाद देने के लिये वे बाजितपुर गये थे।

कलकत्ता लौट कर आये पर स्वास्थ्य अत्यन्त बिगड़ गया था, लौटने में बहुत कष्ट हुआ। बाजितपुर से सिन्धिया घाट पर्यन्त नौका को खींच कर लाना पड़ा था। आते ही उन्होंने कहा, अब बाजितपुर नहीं जाऊंगा। बाजितपुर जाने में बड़ा कष्ट है। यह एक और संकेत था।

"यह दिन का अवसान है" यही बात शायद वे कहना चाहते थे। कुछ दिनों से बीच-बीच में और एक बात कहते थे, "मैं satisfied हूँ"। सब सोचते थे अनेकों बाधाओं का अतिक्रमण कर संघ ने असाधारण सफलता अर्जन कर ली है। शायद 'मैं satisfied हूँ', उसी बात को अभिव्यक्त करता है। मैं जिस काम के लिये आया था वह संपूर्ण कर अब अपनी लीला को समेटने का समय आ गया। 'मैं satisfied हूँ', इस भाव से संघ-सन्तान ने न सोचा था। उनमें अब यह शरीर धारण की इच्छा न रही; उनके संतानों के लिए, इस मर्मान्तिक आघात के बिषय में सोचना भी मुश्किल था।

कलकत्ता पहुँचते ही उत्तरबंग जाने की इच्छा प्रकट की। आंश्रम में उपस्थित सन्यासियों में से अधिकांश ने उत्तरबंग की ठण्ड में, अस्वस्थ हालत में जाने से उन्हें रोकना चाहा। पर किसी की आपत्ति उन्होंने न सुनी। वे अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। उन्होंने आज्ञा दी "टूर का प्रोग्राम बनाओ।"

शेष अभियान

१५ दिसम्बर १९४० को आचार्यदेव उत्तरबंग के भ्रमण के लिये लिकले। महाप्रयाण के पूर्व यही उनकी अन्तिम प्रचार यात्रा थी।

इस समय दिसम्बर की प्रचण्ड सर्दी में जलपाईगुड़ी में संघ का एक चारण दल प्रचार में व्यस्त था। ऐसे समय उन्हें सूचना मिली कि संघनेता प्रचार के लिये उत्तरबंग आ रहे हैं। अभियान की शुरूआत जलपाईगुड़ी से होगी। १६ दिसंबर भोर के समय वे जलपाईगुड़ी पहुँचे। गाड़ी में उन्हें ठण्ड लग गयी। सुबह से ज्वर सा लग रहा था। उनको लेकर एक विराट शोभायात्रा शहर की परिक्रमा करती हुई उनके निर्दिष्ट वास स्थान तक पहुंची। उनके लिये थोड़ा आराम जरूरी था। उस ओर उनका किंचित मात्र भी ध्यान न था। वे वहाँ आराम करने तो आये नहीं थे। असंख्य दर्शनार्थी दर्शन की आशा में खड़े थे उन्हें दर्शन दिये बिना किस तरह लौटा दें। दर्शन, उपदेश देने के लिये वे आसन पर आकर बैठ गये। उधर समय बढ़ता जा रहा है। सेवक चाहते थे अब बाबा थोड़ा आराम कर लें। सारी रात गाड़ी में कटी थी, थोड़ा विश्राम जरूरी था। उन्होंने पुकार कर कहा, "देखो तो कोई और दर्शन की लालसा से खड़ा है क्या ?" जो व्याकुल हो दर्शन के लिये दौड़े चले आये हैं उन्हें किस प्रकार लौटायें ? इस समय क्या देह की चिन्ता करने से चलेगा ? समय तो बहुत कम है, जो खड़े हैं, सबको बुला ले आओ। दरवाजे से कोई लौट कर न जाने पाये। वे किसी को भी नहीं लौटायेंगे। उनकी करूणा से कोई वंचित न रह पायेगा।

लोगों का तांता सा बंधा था, खत्म होने को ही नहीं आ रहा था। सेवकों ने कहा, लोग तो सारा दिन ही रहेंगे। थोड़ा नहा धोकर खा लें। उन्होंने कहा—मैं क्या यहाँ विश्राम करने आया हूँ? जा दरवाजा खोल दे। जो प्रतीक्षा कर रहे हैं उन्हें अन्दर ले आ। करूणावतार लंबे समय तक बैठे लोगों को दर्शन, उपदेश और आशीर्वाद देते रहे।

जब एक भी व्यक्ति बाकी न रहा तब आसन से उठे। स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था इस लिये स्नान नहीं किया। भोजन पर बैठे दो चार ग्रास मुख में डाल कर ही उठ खड़े हुए। दोपहर में ज्वर आ गया। संध्या को टाऊन हॉल में सभा थी। हजार-हजार लोग समवेत हुए थे। हॉल में इतना स्थान न होगा, मैदान में सभा की व्यवस्था की गयी। अस्वस्थ शरीर से ही वे सभा में गये। जलपाईगुड़ी जैसी ठण्डी जगह में रात के नौ बजे तक खुले आकाश के तले बैठे रहे। सभा के खत्म होने पर उत्ताल जलतरंगो की भांति लोग प्रणाम करने लगे। काम खतम करके लौटते अधिक रात हो गई। रात में ज्वर और बढ़ गया। ज्वर कम करने के लिये माथे पर बरफ रखनी पड़ी।

दूसरे दिन भोर होने से पहले ही आचार्यदेव आसन पर आकर बैठ गये। अपने शरीर का उन्हें ध्यान नहीं। बाहर अधीर आग्रही अजस्र नर-नारी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक को भी उन्होंने लौटाया नहीं। उनकी कृपा से कोई भी वंचित न हुआ।

सबको दर्शन और उपदेश दिया। सन्ध्या को कालीमन्दिर के प्रांगण में वैदिक यज्ञ तथा सम्मेलन की व्यवस्था की गयी। आचार्यदेव का स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया। सारा दिन कुछ भी नहीं खाया। संध्या को यज्ञवेदी के सामने वे तीन घण्टे बैठे हजारों भक्तों को आशीर्वाद देते रहे। वासस्थान पर लौट कर भी विश्राम नहीं था, यहाँ भी उपदेश-प्रार्थियों की भीड़ थी। सबको विदा कर जब उठे तो ज्वर के साथ ही साथ उल्टी भी शुरू हो गयी थी।

दूसरे दिन जलपाईगुड़ी के नेता श्री नलिनी घोष एवं उनकी पत्नी ने अत्यन्त विनीत भाव से उन्हें अपने सन्यासियों सहित अपने घर में आने की प्रार्थना की। अपने शुभ चरण धर, भोजन कर कृतकृत करने का आग्रह किया। भक्त की प्रार्थना आचार्यदेव ने सुन ली, अपनी सहमति दे दी। उस दिन भी सुबह-सुबह दूर-दूर से दर्शनार्थी आये थे। प्रधान सन्यासियों ने आचार्यदेव की अस्वस्थता की बात कही। वे केवल दर्शन चाहते थे। सब दर्शन कर घर लौटे।

ग्यारह बजे कंप-कंपी के साथ बुखार आया। फिर उल्टी शुरू हुई। समय पर नलिनी बाबू की गाड़ी आयी। प्रबल ज्वर लिये ही आचार्यदेव जाने को तैयार हो गये। वे तो भक्तवत्सल थे। भक्त की प्रार्थना क्या वे अपूर्ण छोड़ सकते हैं।

सब को लेकर वे नलिनीबाबू के घर गये। गृहस्वामी ने भक्तिभाव से प्रणाम किया, हाथ जोड़ कर गदगद भाव से आचार्यदेव को घर के अन्दर ले गये। भोग के सब पदार्थ उनके सामने सजा कर रख दिये गये। थोड़ा पहले ही वे ज्वर से छटपटा रहे थे। अति सामान्य होने पर भी उन्होंने अपने सामने निवेदित सभी सामग्री में से यहां तक कि दही भी, थोड़ा-थोड़ा ग्रहण किया। महाप्रयाण से पूर्व अस्वस्थ शरीर के लिये हानिकारक समझ कर भी भगवान बुद्ध ने अपने सामने निवेदित संपूर्ण भोजन से कुछ न कुछ ग्रहण कर अपने भक्ति को तुष्ट किया था।

आचार्यदेव आश्रम में लौट कर आये। ज्वर से प्रायः बेहोश से थे। तीन बज रहे थे। बाहर एक दर्शनार्थी दर्शन की आशा में खड़ा था। उस भाग्यवान को निराश लौट कर नही जाना पड़ा। आचार्य ने उसे बुला कर विस्तर पर बैठे-बैठे दीक्षा दी।

जलपाईगुड़ी का काम खत्म हुआ। सन्ध्या समय दिनाजपुर के लिये रवाना होना था। वहाँ उपस्थित सन्यासियों ने विचार किया कि इस अवस्था में आचार्यदेव को दिनाजपुर न ले जाकर सीधा कलकत्ता ही ले जाया जाये। अपना मत उन्होने आचार्यदेव से कह सुनाया परन्तु उनकी इच्छा के बारे में पता न चला। उन्हें तंग करना कोई भी नहीं चाहता था। हठात् उन्होंने पूछा, दिनाजपुर की गाड़ी कितने बजे छूटती है? एक ने कहा, गाड़ी छूटने में पन्द्रह मिनट बाकी हैं। उन्होंने कहा, इसी गाड़ी से जाना होगा। शीघ्र ही तैयार हो कर सभी गाड़ी में बैठ गये।

१८ दिसंबर की रात तीन बजे आचार्यदेव दिनाजपुर पहुँचे। पहले से ही निश्चित था आचार्यदेव को शोभायात्रा के साथ शहर में ले जाया जायेगा। अत: विश्राम घर में ही बाकी रात विश्राम किया गया। बीच-बीच में उल्टियां हो रही थी। सारी रात केवल ग्लुकोज का पानी ही पीते रहे।

भोर होते ही स्टेशन हजारों लोगों से भर उठा। प्राय: एक मील लंबी शोभायात्रा थी। शहर के विभिन्न रास्तों में घुमाकर आवास स्थल तक पहुँचे। एक के बाद एक प्रणाम कर आशीर्वाद पाने लगे। दिन में केवल बार्ली खायी। सन्ध्या के समय थोड़ा सा स्वस्थ हुए। सन्यासियों ने कहा—इस तरह रुग्नावस्था में काम करने से शरीर स्वस्थ कैसे होगा? आचार्यदेव ने कुछ उत्तर नहीं दिया। फिर कहा, एक गिलास पानी दो। पानी पीकर ग्लास देते हुए कहा—"लो, बस और कुछ दिन।" इस स्थूल शरीर में वे और अधिक दिनों तक नहीं रहेंगे, इसी का संकेत दे रहे थे।

सन्ध्या के समय टाऊनहॉल में सभा थी। दुर्बल अस्वस्थ अवस्था में ही वे एक आसन पर तीन घंटे लगातार बैठे रहे। दूसरे दिन दोपहर कितने ही दर्शनार्थियों को दर्शन एवं उपदेश दिया। इसी अवस्था में रंगपुर के लिये रवाना हुए। संकल्प लिया है, यात्रा पूरी करनी ही होगी।

२० दिसंबर सन्ध्या के समय वे रंगपुर पहुंचे। स्टेशन पर हजारों लोग शोभायात्रा में योगदान के लिये इकट्ठे हो गये। तीन मील की लंबी परिक्रमा कर शोभा यात्रा निर्दिष्ट वासस्थान पर आकर रूकी। दर्शन के लिये हजारों की भीड़ थी। सभी दर्शन चाहते थे। अत्यन्त कठिनाई से उन्हें समझा बुझा कर वापिस भेजा गया। दो दिनों तक रंगपुर में उनका स्वास्थ्य अत्यन्त बिगड़ गया था। इसके बाद रंगपुर से कलकत्ता की ओर रवाना हुए।

—इसके बाद महाप्रयाण। १९४१ सन् की ८ जनवरी; बांगला २४ पौष १३४७ साल, बुधवार रात १२.४५ पर कलकत्ता में आचार्यदेव ने महाप्रयाण किया।

अनिर्वाण ज्योति

आचार्यदेव के लीलावसान के पहले लाखों-लाखों नर नारियों ने अपनी भक्ति और श्रद्धा आचार्यदेव के श्री चरणों में निवेदित किया था और अपने आपको धन्य माना था। कितने ही सैकड़ों दुखी आर्त्त लोगों ने उनके पास शान्ति की तलाश में आ कर चित्त की शान्ति पाई थी। अपने जीवन की समस्याओं के समाधान का पथ खोज पाये थे। अगणित भक्त शिष्य गृहस्थ उन्हें शिव के अवतार के रूप में पूजते थे। उनके आश्रित भक्त उनके चरणों में श्रद्धा से, भक्ति से अपना समर्पण करेंगे यह तो स्वाभाविक ही है। उस समय के विद्वान जो उनका सान्निध्य पा चुके थे, जरा सा भी

संपर्क में आये थे, वे भी उन्हें भक्तिपूर्वक विनम्रता से श्रद्धा करते । उस समय के साधु-सन्यासी आचार्यदेव को किस दृष्टि से देखते थे यह जानना भी हमारे लिये आवश्यक है। हमलोगों की दृष्टि तथा साधुओं की दृष्टि में बहुत अन्तर है।

१९१५ सन् में भोलानन्द गिरि महाराज मदारीपुर आये थे। गिरि महाराज के दर्शन के लिये अगणित नर-नारी एकत्रित हुए थे। दर्शनार्थियों की भीड़ में सबसे पीछे मौन, गंभीर, अपनी ही मौज में एक युवक खड़ा था। अपने तेज से ही वह तेजस्वी युवक उज्ज्वलित हो रहा था। "यह युवक कौन है? सुरेन्द्र उस लड़के को मेरे पास बुलाओ तो।" गिरिराज ने मदारीपुर के कांग्रेसी नेता श्री सुरेन्द्र विश्वास से कहा। युवक को देख सुरेन्द्र बाबू भी चमत्कृत हो उठे। इतनी भीड़ में जिस युवक ने सिद्ध योगी का ध्यान आकृष्ट कर लिया जरूर उसमें कोई तो बात है। सुरेन्द्रबाबू उस लड़के को बुला लाये। गिरि महाराज ने उसका आदर सत्कार किया। केवल इतना ही नहीं, युवक के अनुरोध पर वे बाजितपुर जाने के लिये भी तैयार हो गये। यह युवा ही बाद के स्वामी प्रणवानन्द जी थे, उस समय बाबा गंभीरनाथ के मन्त्रशिष्य महायोगी तपस्वी ब्रह्मचारी विनोद थे।

भारत विख्यात सिद्ध महापुरुष श्री श्री भोलानन्द गिरि महाराज चार बार बाजितपुर गये थे। पहली बार जब वे बाजितपुर गये तब आचार्यदेव के शिष्य सतीश बाबू वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने लिखा है—जब गिरि महाराज बाजितपुर के आश्रम में आये तब विनोद ने सन्यास नहीं लिया था। वे विनोद ब्रह्मचारी के नाम से ही विख्यात थे। आश्रम में एक शेवड़ा वृक्ष के नीचे सतीशबाबू, ब्रह्मचारी तथा भोलानन्द गिरि महाराज बैठे हुए थे, और कुछेक वहाँ पर खड़े थे। ऐसे वक्त ब्रह्मचारी की माँ भोलागिरि बाबा को प्रणाम करने आयी। माँ का मन अत्यन्त दुख से, अभियोग से भरा हुआ था। इतना तेजस्वी लड़का है पर उसका घर-संसार में मन ही नहीं लगता। श्मशानों में धूमता रहता है। घर द्वार छोड़ उस शेवड़ा वन के कूड़ेघर में रह रहा है। यह सब क्या माँ सहन कर सकती हैं? गिरि महाराज को प्रणाम कर उन्होंने कहा, "साधुबाबा मेरे इस लड़के ने उच्चशिक्षा प्राप्त नहीं की, संसार से उदासीन रहता है। जिस प्रकार उसका मन घर-संसार में लगे, वह उपाय उसे बतला दें। गिरि महाराज कुछ क्षणों तक ब्रह्मचारी की ओर देखते रहे फिर हिन्दी-बंगला मिला कर कहा—आरे बेटी, तोर एई बेटा तो चक्रवर्ती राजा है, घबड़ाओ मत।" सतीश बाबू ने आगे लिखा है,—गिरि महाराज की कही हुई वाणी उस प्रकार फलेगी, इसकी हमें बिन्दु मात्र भी कल्पना न थी। परवर्ती काल में उन्होंने सचमुच राजराजेश्वर का वेश धारण कर लाखों नर-नारियों की पूजा का अर्घ्यग्रहण किया था। आज सारे विश्व में उनका यश, उनकी ख्याति फैली हुई है। भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है, इसे हम साधारण

मनुष्य नहीं जान पाते परंतु त्रिकालज्ञ योगी के सामने भविष्य दिन के उजाले की भांति स्पष्ट होता है।

एकबार स्वामी मुक्तानन्दजी आचार्यदेव और कई सन्यासी भाइयों के साथ हरिद्वार गये थे। उस समय स्वामी मुक्तानन्दजी को जो अविस्मरणीय ज्ञान-लाभ हुआ था उस घटना का पता हमें सत्येश्वरानन्दजी द्वारा लिखित लेख से चलता है।

आचार्यदेव संघ संतानों के साथ कनखल में एक किराये के घर में ठहरे थे। बहुत अधिक काम था नहीं। मुक्तानन्दजी तथा दो और सन्यासी भाइयों ने तय किया कि ऋषिकेश घुम आयेंगे। घूमने जाने का एक और उद्देश्य भी था। ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्द एक विख्यात साधु थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी थी औरा विदेशों में वेदान्त का प्रचार कर ख्याति अर्जन किया था। उनसे मिलना तथा उनसे कुछेक पुस्तकें लेना भी उनका उद्देश्य था। वे जब स्वामीजी के पास आज्ञा लेने गये तो उन्होंने कहा, "जाओ पर जल्दी लौट कर आना। देर होने पर मुझे चिन्ता होगी।"

स्वामी मुक्तानन्दजी और दोनो सन्यासी भोर से रवाना हुए तथा ऋषिकेश सुबह नौ बजे पहुँचे। स्टेशन से शिवानन्दजी का आश्रम चार-पाँच मील की दूरी पर था। उनके लिये नई जगह, रास्तों की भी अच्छी तरह जानकारी न थी। वे पैदल ही चलते-चलते ऋषिकेश की गंगा के सबसे सुन्दर घाट वानप्रस्थ घाट पर आ पहुँचे। वहाँ स्नान-ध्यान करते-करते काफी समय हो गया। उन्हें बहुत भूख लगी थी पर खाना खरीदने के लिये अतिरिक्त पैसे पास में न थे। अन्नछत्र में जा कर भिक्षान्न ग्रहण करने की इच्छा भी न थी। समय भी बहुत हो गया था। अन्नछत्र से भोजन मिलेगा ही, इसकी भी आशा न थी। उधर हरिद्वार लौटने की गाड़ी चार बजे थी। भूख की ज्वाला को भुलाकर वे शिवानन्दजी का आश्रम खोजते-खोजते जब वहाँ पहुँचे तो डेढ़ बज चुका था।

आश्रम का द्वार बन्द था। हाथ से खटखटाने पर एक सन्यासी बाहर आये। उन्होंने पूछा, 'क्या चाहिये' तो तीनों ने उत्तर दिया वे स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन की अभिलाषा से आये हैं। उस सन्यासी ने कहा, महात्मा विश्राम ले रहे हैं। वे वयोवृद्ध है, आज ही मद्रास से लौटे हैं, अस्वस्थता बोध कर रहे हैं। संध्या चार साढ़े चार से पहले भेंट न हो पायेगी। स्वामीजी ने कहा, वे भारत सेवाश्रम से आये हैं, संध्या चार बजे की गाड़ी से उन्हें वापिस लौट जाना है। उन्होने प्रार्थना की कि उन्हें दो एक मिनट के लिये महात्माजी से मिलने दिया जाये। अनुरोध सुन कर वह सन्यासी भीतर चला गया।

कुछ देर बाद एक महात्मा अत्यन्त आकुल भाव से उनके सामने आये। उनके

चेहरे का तेज ही उनका परिचय दे रहा था कि वे ही स्वामी शिवानन्द जी हैं। तीनों सन्यासियों ने सोचा, दो एक बात कर वे उन्हें दरवाजे से ही विदा कर देंगे। सामने आते ही महात्माजी धरती पर साष्टांग प्रणाम की मुद्रा में लेट गये। तीनों सन्यासी विकट धर्मसंकट में आ पड़े, वे नवीन सन्यासी और उनके सामने साष्टांग करते हुए विश्वविख्यात धर्मप्रवक्ता, वेदान्ती, आसाधारण संगठन प्रतिभा वाले मनीषी, विद्वान और श्रेष्ठ लेखक। उनके सामने अजीब परिस्थिति थी।

कुछ देर बाद ही स्वामीजी महाराज की वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ता कट गयी। उन्होंने महात्माजी को उठा गले लगा लिया। महात्माजी उनका हाथ पकड़, उन्हें सादर अपने विश्राम कक्ष में ले गये। उन्हें वहाँ बैठा कर उन्होंने कहा, आप 'भारत सेवाश्रम संघ' के साधु हैं। स्वामी प्रणवानन्दजी से मन्त्र प्राप्त किया है आपने। मैंने गत कुम्भमेले में स्वामीजी को देखा था। दूर से उनकी छोटी कुटिया में उन्हें देखा था। त्याग, वैराग्य, ब्रह्मचर्य की ऐसी मूर्त्ति कहीं और नहीं देखी। विश्व भर में इतना निष्ठावान ब्रह्मचारी और कहीं नहीं है। रास्ते से ही उन्हें देख मन ही मन साष्टांग दण्डवत कर चला आया। मेरा साहस नहीं हुआ कि मैं इस ज्वलन्त पावक (आग) के पास जाऊँ। उस दिन से ही उनकी स्मृति मेरे मन में गुंथी पड़ी है। आप लोगों को प्रणाम कर, दर्शन कर, मैं धन्य हुआ। आज मेरे आनन्द का दिन है। बोलिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

इतनी देर बाद स्वामीजी लोगों की भ्रान्ति दूर हुई। वे अब समझ पाये कि किसके लिये, किस उद्देश्य से वह साष्टांग प्रणाम किया गया। वे तीनों तो उपलक्ष मात्र थे।

इतने बड़े ख्यातनामा वैदान्तिक विश्वविख्यात धर्म प्रचारक के श्रद्धा से भरे वचनों को सुन हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय के साधु सन्यासी आचार्यदेव के प्रति क्या धारणा रखते थे।

संघ के पूज्य बड़े स्वामीजी (प्रख्यात स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज) युवावस्था में वैराग्य की खोज में हरिद्वार गये थे। वहां उनकी भेंट योगी श्रेष्ठ भोलानन्द गिरि महाराज से हुई। गिरि महाराज ने उनसे पूछा—"कहाँ से आया?" जब मालूम पड़ा बाजितपुर से, तब उन्होंने कहा, "बाजितपुर से आया, वहाँ विनोद नहीं है? वह ज्योति है, प्रेमी है।" गिरि महाराज अच्छी तरह जानते थे विनोद एक 'अनिर्वाण ज्योति' है।

द्रष्टव्य— 'कण्ठे कण्ठे करुणा कथा' अब "श्रीश्री प्रणवानन्द शत रूपे शतमुखे" नाम से प्राप्त है।

संघ प्रकाशित हिन्दी किताबें

१. युगाचार्य जीवन चरित
२. जीवन की झांकियाँ
३. ॐ संघवाणी
४. जीवन साधना के पथ पर
५. पाथेय
६. हिन्दुत्वम्
७. गंगा सागर की माहात्म्य
८. प्रणवानन्द उपदेश
९. भारत में कुम्भमेला
१०. ॐ श्रीश्री जगदगुरु
११. महाभारत की कहानियाँ
१२. गया माहात्म्य
१३. ब्रह्मचर्यम्
१४. कर्मपरिचिति
१५. भाषणांजलि
१६. बच्चों की प्रणवानन्द
१७. युगपुरुष स्वामी प्रणवानन्द
१८. सहज योगासन शिक्षा
१९. श्रीश्री प्रणवानन्द शत् रुप, शत् मुख में

डि. भि. डि. (जीवनी)

₹ 40.00

ISBN : 978-93-84965-02-0